शकारि विक्रमादित्य

हमारा उपन्यास साहित्य का प्रकाशन

बेगम हजरत महल	श्री रघुवंशदयाल सावंत शास्त्री	२.५०
भाग्य के दायरे	डा० हनुमानदास	४.५०
जीवन और संघर्ष	प्रो० गिरवर प्रसाद तिवारी	५.५०
तूफानों के बीच	श्री वीरेन्द्र पाँडेय	४.५०
बन्दे मातरम्	श्री रवीन्द्रनाथ बहोरे	१२.००
प्रेम की अंतिम मोड़	डा० लक्ष्मी नारायण टंडन	६.००
हमारी बाहों में	श्री सच्चिदानंद अवस्थी	४.००
जयमाला	कुमारी नीरजा आनन्द	४.७५
अतीत	सत्यनारायण लढ़ा 'पुष्प'	२.००
जीवन के मोड़	आचार्य रमाकाँत मिश्र	४.५०
ढलती रात डूबते तारे	श्री विमल कुशवाहा	३.५०
बहू के चरण	प्रो० शंकरदयाल पाण्डेय	३.२५
दुश्चरित्र	,,	३.००
दाराशिकोह (पुरस्कृत)	अवध प्रसाद वाजपेयी	१०.००
मैं हार गया	हरी जुत्सी	३.७५
भटकती लहरें और किनारा	श्री शील एम. ए.	४.२५
अन्तर्द्वन्द्व	वीरभानु सिंह 'प्रताप'	३.५०
सम्राट के आँसू	,, ,,	४.००
सन्ध्या	रूपनारायण पाण्डेय	४.००
तीन तिलंगे	अलेक्जेन्डर ड्यूमा	१३.५०
नये राही नये रास्ते	डा० हनुमान दास 'चकोर'	२.२५
दूर की आवाज	श्री मोहनलाल कुकरेती एम. ए. (कहानी)	३.५०
हरा फीता	डा० गोपीनाथ तिवारी	२.२५
हल्दीघाटी	श्री श्याम सुन्दर "सुमन"	२.००
दीप से दीप जले	डा० गोपीनाथ तिवारी	२.२५

शकारि विक्रमादित्य

(ऐतिहासिक मौलिक उपन्यास)

लेखक

आचार्य रमाकान्त मिश्र

[आदि कवि वाल्मीकि, जीवन के मोड़, अर्न्तद्वन्द आदि
पुस्तकों के रचयिता]

मुख्य विक्रेता

नवयुग ग्रन्थागार

सी ७४७ महानगर लखनऊ,

* प्रकाशक—

हेमेन्द्र कुमार तिवारी
अध्यक्ष
नन्दनी प्रकाशन
लालकुआं, लखनऊ

* प्रथम संस्करण —

विजयदशमी सम्वत २०२६

* मूल्य— ५.००

* आवरण पृष्ठ—
भैरोदत्त ''करुण''

मुद्रक :
सीताराम प्रिंटिंग प्रेस, चाँदगंज बड़ा
लखनऊ

'दो शब्द'

विक्रमादित्य के संबंध में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ श्रेष्ठतम कलाकारों की कलाकुशलता से "विक्रमार्क" भारतीय जनमानस को चिरकाल से आलोकित करते आ रहे हैं। फिर भी प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रति मेरे मन में निगूढ़ भाव से बजने वाली मेरी ममत्व भावना ने इस महापुरुष के पाद-पद्मों पर भाव-सुमन समर्पित करने के लिए मुझे बलात् विवश बना दिया।

विद्वानों में विक्रमादित्य के सम्बन्ध में मतभेद है। कुछ लोग एक ही विक्रमादित्य को मानते हैं। और कुछ लोग कई विक्रमादित्यों की स्थिति को स्वीकार करते हैं।

किन्तु द्वितीय चन्द्रगुप्त को भी विक्रमादित्य की उपाधि से विभूषित किया गया था, इस पर अधिक मतभेद नहीं है। मैंने द्वितीय चंद्रगुप्त को ही विक्रमादित्य पद भूषित मानकर लिखा है।

ऐतिहासिक उपन्यास लिखना अपेक्षाकृत कठिन होता है। इस उपन्यास को लिखने में मुझे भी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। बीच में उपन्यास की प्रगति में बाधा आ गई थी, किन्तु मां शारदा की कृपा से वह दूर हो गई।

यहाँ मैं यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मैं इतिहास लिखने नहीं बैठा था। उपन्यास के माध्यम से भारत के एक महान राष्ट्रप्रेमी के चरित्रको जन-मन के समक्ष आदर्श रूप में उपस्थित करना मेरा अभीष्ट था। फलत: ऐतिहासिक तथ्यों को सुरक्षित रखते हुए मैंने अपनी कल्पना प्रिया का पर्याप्त सहयोग प्राप्त किया है। किमाधिकाम विज्ञेषु।

अन्त में निवेदन है कि मुद्रण की अशुद्धियों को पाठक गण स्वयं सुधार लेंगे। और त्रुटि-कंटकों के रहते हुए भी आनन्द पुष्प प्राप्त कर लेंगे।

रमाकाँत मिश्र

प्रधानाध्यापक जा. संस्कृत विद्यालय

नरकटियागंज

चम्पारण

प्रकाशकीय

हिन्दी उपन्यासों के अन्तर्गत ऐतिहासिक उपन्यासों का महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु इनके लेखक इने गिने हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों की एक विशेषता होती है कथोपकथनों के मध्य ऐतिहासिक तथ्यों का इस प्रकार प्रस्तुत करना कि उपन्यास की सत्ता बनी रहे, और ऐतिहासिक तथ्य को भी स्थान मिल सके। इस दृष्टि से लिखे गए उपन्यासों की ऐतिहासिकता जीवन्त रहती है। आचार्य रमाकांत मिश्र इस दृष्टि से सफल रहे हैं।

आचार्य रमाकांत जी का ऐतिहासिक उपन्यास 'शकारि विक्रमादित्य' मैंने पढ़ा है। आदि से अन्त तक सरसता का परिपाक मिलता है पात्रो के कथोपकथन सप्राण हैं और ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घाटन बड़ी सफलता से किया है। 'शकारि विक्रमादित्य' की ऐतिहासिक महत्ता पर मिश्र जी ने सफलता पूर्वक प्रकाश डाला है। वर्णन शैली बड़ी रोचक एवं सरस है। इस उपन्यास के लिखने में मिश्र जी का प्रयास सराहनीय है।

प्रकाशक

: १ :

शकारि विक्रमादित्य

"बन्दे बिजयाम्" कहकर युवक ने महिषासुर मर्दिनी दुर्गा के चरणों पर सिर टेक दिया।

आधी रात का समय था। कृष्ण चतुर्दशी तिथि थी। अन्धकार रूपी अजगर ने समस्त सृष्टि को उदरस्थ कर लिया था। नगर से दूर अरण्य के निर्जन मन्दिर में एकाकी निर्भीक युबक सिर टेके पड़ा था। कक्ष में घृतदीप निद्रालस झूम रहा था।

इसी समय सहसा युवक ने कानों में देववीणा के स्वर सा मधुर स्वर सुनाई पड़ा, वीर, आपकी विजय होगी।

चौंककर युवक ने आंखें खोलीं, देखा, सामने साक्षात् भुवन मोहनी रूप में देवी खड़ी हैं। भक्ति पूर्ण गदगद कंठ से हाथ जोड़कर युवक ने कहा, देवि, दर्शन से कृतार्थ हो गया।

मुस्कराकर मोहनी ने कहा, मैं देवी नहीं हूं।

तब आप कौन हैं?

देवदूती।

युवक उठकर खड़ा हो गया। बोला, फिर भी मेरा पूर्व कथन यथा स्थान है। देवों का आदेश सुनाकर मुझे कृतार्थ करें।

आपकी विजय होगी। किन्तु·

किन्तु क्या देवी ?

एक बाधा है ।

युवक ने आकुलकंठ से पूछा, उसका निराकरण क्या है ?

बलिदान ।

बलिदान ? किसका ?

समय पर ज्ञात होगा । और तभी……।

जी ?

सिर नीचे कर वह धीरे से बोली, और तभी देवी प्रसन्न होकर आपको साक्षात् शक्ति प्रदान करेगी ।

इसी समय बाहर से किसी की पद ध्वनि सुनाई पड़ी । युवक ने द्वार की ओर घूम कर देखा, आने वाला उसीका अनुचर था ।

युवक ने पुन: मोहनी की ओर दृष्टि की, किन्तु तब तक वह लुप्त हो चुकी थी । चकित होकर युवक मूर्ति के पीछे की ओर गया । परंतु वह वहां नहीं थी । उस के निकलने की दूसरी राह भी दृष्टिगोचर नहीं हुई । अत: युवक को विश्वास हो गया कि वह अवश्य देवदूती थी, कोई देवाङ्गना थी ।

उसका अलौकिक सौन्दर्य अबभी उसकी आंखों के सामने सुधारस की वृष्टि कर रहा था । उसका स्वर हृदय को झंकृत कर रहा था ।

कुछ देर तक अभिभूत सा खड़े रहने के बाद, युवक द्वार की ओर आया । अनुचर से पूछा, धर्मपाल, कुछ पता चला ?

झुककर, अभिवादन करने के बाद, धर्मपाल बोला, देव, सूचना सत्य है ।

चौंक कर युवक ने पूछा, तो क्या शक सम्राट यहां स्वयं उपस्थित हैं ?

हां देव । वह अपने कुछ विश्वस्त सैनिकों के साथ गुप्त रूप में नगर के उत्तरी संघाराम में ठहरा हुआ था । किन्तु अब कहां है, ज्ञात नहीं हो सकता है ।

यह युवक सम्राट समुद्रगुप्त का पुत्र द्वितीय चन्द्रगुप्त था। साम्राज्य की सेना की छोटी सी टुकड़ी के साथ राजकीय शासन व्यवस्था के निरीक्षण के क्रम में पश्चिमोत्तर जनपदों में घूमता हुआ कल, अयोध्या राज्य के सीमांत पर पहुंचा था। वहीं पर उसे एक अज्ञात व्यक्ति के द्वारा सूचना मिली थी कि अयोध्या राज्य में शक गुप्तचरों की गतिबिधि बढ़ी हुई है। साथ ही सम्भवत: है कि स्वयं शक सम्राट रुद्रसिंह भी आ गया है।

अयोध्या राजा अपने को गुप्त साम्राज्यके अधीन मानता था। उसे बार्षिक कर भी देना था किन्तु सन्धि के अनुसार उसे आन्तरिक स्वतंत्रता प्राप्त थी।

अत: चन्द्रगुप्त शको की अभिरुचि का पता लगाने के लिये गुप्त वेश में अपने विश्वस्त चार गुप्तचरों के साथ आज सन्ध्या समय अयोध्या में पहुंचा था। उसने अपनी सेना का शिविर सीमान्त पर ही रख दिया था।

चन्दगुप्त ने पूछा, वह स्वयं किस उद्देश्य से आया है ?

धर्मपाल कुछ और निकट आकर धीरे से बोला, देव, ठीक तो नहीं कह सकता हूं, किन्तु एक आशंका है।

क्या ?

यहां की राजकुमारी ध्रुवस्वामिनी अलौकिक सुन्दरी है सुना है, उसे विवाह करने के लिए शक सम्राट ने अयोध्या नरेश के निकट संवाद भेजा था किन्तु अयोध्या नरेश ने अपनी असहमति की सूचन भेज दी थी।

असहमति का कारण क्या ?

राजकुमारी शकों से घृणा करती हैं।

प्रसन्न कंठ से चन्द्रगुप्त ने पूछा, सचमुच राजकुमारी शकों से घृणा करती है ?

हां देव । सुना है, गतवर्ष कोई शकचित्रकार शक सम्राटों का चित्र बेच रहा था । राजकुमारी ने जब उसे देखा, तो उसे जलवा दिया तथा चित्रकार को अपमानित कर नगर से बाहर निकलवा दिया । प्रसन्न स्वर से चन्द्रगुप्त ने कहा, तब तो राजकुमारी निश्चित शक शत्रु हैं। और यह हम लोगों के लिये प्रसन्नता की बात है । किन्तु धर्मपाल, राजकुमारी पर संकट सन्निकट है ।

मुझे भी आशंका है कि शकसम्राट रुद्रसिंह राजकुमारी के अपहरण की चेष्टा करेगा ।

विदेशी शकों से बचपन से ही घृणा करने वाला चन्द्रगुप्त अपहरण की बात सुनकर क्रोध से उबल उठा । क्रुद्धकंठ से बोला, मेरे जीवित रहते रुद्रसिंह अपने इस घृणित कार्य में कभी भी सफल नहीं होगा । संशय के स्वर में धर्मपाल बोला, किन्तु देव, इस समय यहां हम लोगों की संख्या कम है। और संभवतः रुद्रसिंह अधिक आदमियों को लेकर आया होगा ।

दृढ़ स्वर से चन्द्रगुप्त ने कहा, फिर भी, वह चोर बनकर आया है, इसलिये उसमें उतनी दृढ़ता नही आ सकेगी, थोड़ी सावधानी से ही हम लोग उसके संकल्प विफल कर सकते हैं। किन्तु वह कब क्या करना चाहता है इसका पता होना चाहिए ।

कुछ रुककर धर्मपाल बोला वीरभद्र इसी काम के लिए संघाराम में रह गया है । आशा है, वह अवश्य कुछ सूचना लेकर आयेगा । किन्तु देव मेरा विचार है कि सहयोग के लिए शिविर से कुछ और आदमियों को बुला लेना अच्छा रहेगा ।

क्षणभर सोचकर चन्द्रगुप्त ने पूछा, किसको बुलाना चाहते हो ?

कुन्तधर को । यदि वह अपने पांचयसािथयो ोंतसथाअको ज ो

हमें अपने कार्य में सुगमता हो जायगी। ठीक है, बुलवा लो। किन्तु बुलाने कौन जायगा ?

धर्मपाल ने पूछा, श्रुतिधर को भेज दूं ?

भेज दो। कह देना वे गुप्तरूप से आवें, और मध्याह्न से पूर्व ही यहां उपस्थित हो जायं।

इसी समय वहां वीरभद्र आ गया। चन्द्रगुप्त ने उत्सुकता से पूछा वीरभद्र, कोई नई सूचना मिली है ?

अभिवादन कर नम्र स्वर से वीरभद्र बोला, थोड़ा सा संकेत सूत्र पा सका हूं।

कहो।

संघ्याराम में एक युवती भिक्षुणी है, धर्ममित्रा। वह अयोध्या के राजकीय अन्तःपुर में भी जाती है। सुन्दरी है, साथ ही संगीत कुशला भी। मुझे उस पर कुछ संदेह है।

संदेह का कारण क्या है ?

अपरान्हकाल में नगर से लौटते समय उसके हाथ में शकदेशिया वीणा थी। किन्तु इधर से जाते समय वह उसे लेकर नहीं गई थी।

तब ?

मैंने उससे संपर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया है। कुछ सफलता भी मिली है।

प्रसन्न स्वर से चन्द्रगुप्त ने पूछा, क्या उसने कुछ सूचना दी है ?

वीरभद्र मुस्कराकर बोला, देव, वह बहुत बुद्धिमती है। सतर्क है। केवल उससे इतना जान सका था कि किसी बड़े बौद्ध शक व्यापारी से उसका परिचय है। उसी ने उपहार में वीणा दी है।

मन्द स्वर से चन्द्रगुप्त ने पूछा, क्या इस सूचना में कोई सार तत्व है ?

हाँ देव । इस क्षीण सूत्र के आधार पर रात्रि के प्रथम प्रहर में धर्ममित्रा का पीछा कर मैंने कुछ संकेत पाया है।

स्पष्ट कहो ।

राजकीय क्रीडा क्षेत्र के पश्चिमोत्तर कोण में सेठ धनदास का महल है। धनदास अपने परिवार के साथ उज्जयन चला गया है महल खाली ,था। उसी में आजकल कुछ दिनों से एक शक व्यापारी रहता है। धर्म मित्रा वहीं गई और वहाँ एक घड़ी तक रह कर लौटी। लौटते समय उसके साथ राज मार्ग तक एक शक भिक्षु आया।
मैं उसे पहचान गया। वह रुद्रसिंह का गुप्तचर है मैं उससे मथुरा में मल चुका हूं।

चौंककर चन्द्रगुप्त ने पूछा, क्या उसने भी तुम्हें देखा है ?
नहीं देव। मैं आम्रवृक्ष की शाखाओं में छिपा हुआ था। प्रसन्न स्वर से चन्द्रगुप्त ने कहा, मैं तुम्हें साधुवाद देता हूं। फिर तनिक रुककर पूछा, और कुछ ज्ञात हो सका है ? नहीं। वहां कुछ देर तक रहने पर भी विशेष ज्ञात नहीं हो सका। क्योंकि, थोड़ी देर में ही प्रकाश के साथ नगर रक्षक सैनिक उधर ही आने लगे थे, अत: मैं चला आया हूं।

प्रसन्न स्वर से धर्मपाल बोला, देव, मुझे विश्वास हो रहा है कि रुद्रसिंह अवश्य उसी महल में है। अत- हम लोगों को उसी महल पर दृष्टि रखनी चाहिए।

चन्द्रगुप्त ने कहा , तुम्हारा बिचार ठीक है उसकी व्यवस्था कर लेनी चाहिए साथ ही धर्ममित्रा को भी दृष्टिपथ में रखना आवश्यक है।

धीरे से धर्मपाल बोला देवका कथन सर्वथा संगत है । धर्ममित्र पर ध्यान रखने से सूत्र संग्रह में सहायता मिल सकती है।

मुस्कराकर चन्द्रगुप्त ने कहा, और यह काम वीरभद्र ही ठीक से कर सकता है।

वीरभद्र ने धीरे से कहा, देवका आदेश शिरोधार्य है। मैं पूर्ण प्रयत्न करूंगा।

धर्मपाल बोला, देव, रात बहुत बीत गई है। अब श्रीमान् को विश्राम करना चाहिए।

चन्द्रगुप्त के हृदय में अभी भी उस देवाङ्गना के रूप माधुर्य का प्रभाव अक्षुण्ण था। उसका मन पुन: उसके दर्शन के लिए अधीर हो रहा था अत: वह यहां से जाना नहीं चाहता था। बोला, तुम लोग चलो मैं कुछ देर में आ जाता हूं। धर्मपाल शंकित स्वर में बोला, निर्जन स्थान में देव का एककी देर तक रहना उचित नहीं है, जब कि शत्रुओं की उपस्थिति प्रमाणित हो चुकी है।

बिना कुछ उत्तर दिए चन्द्रगुप्त पुन: मंदिर में चला गया। और दुर्गा के चरणों पर पुन: सिर टेक कर उसने प्रार्थना की कि "भगवति अपनी दूती को भेजकर मेरी शंका का समाधान करा दीजिए।

इसी समय द्रुतगति से आकर घबड़ाये स्वर में धर्मपाल बोला, देव कुछ लोग प्रकाश के साथ इधर ही आ रहे हैं। रुकना क्या उचित होगा ?

देवी को प्रणाम कर शीघ्रता से चन्द्रगुप्त अपने अनुचरों के साथ अन्धकार में विलीन हो गया।

• • •

: २ :

अपराह्ण काल था अयोध्या नगरस्थित बौद्ध विहार के एकांतकु में धर्ममित्रा अकेली बैठी हुई थी । वह आज कुछ खिन्न थी, भिक्षुणी बन जाने पर भी उसे पूर्णशांति नहीं मिलसकी थी बीच २ में उसका विगत जीवन अपनी कुरूपताओं के साथ उपस्थिति होकर उसके हृदय के घावों पर पड़ी हुई पपड़ियों को खुरच कर नया कर देता था ।

वैशाली के समीपस्थ रामपुर ग्राम के एक सम्पन्न क्षत्रिय परिवार में धर्ममित्रा का जन्म हुआ था । उसे रूपलावराय प्रदान करने के समय बूढ़े ब्रह्मां ने अपनी उदारता की पराकाष्ठा दिखला दी थी किंतु भावी जीवन को सुखमय बनाने के समय उनके भीतर कुरूप कृपणता आ गई थी, जिससे धर्ममित्रा रोरोकर बराबर विधाता को कोसती रहती थी ।

जन्मकाल के समय ही उसकी मां दिवंगत हो गई । दो वर्ष बाद पिता एक युद्ध में वीरगति को प्राप्त कर गये । अतः चंचला कमला उल्लू पर सवार होकर उड़ गई । पड़ोसी ब्राह्मण परिवार ने अनाश्रिता बालिका का अनिच्छा से पालन किया । नववर्ष की अवस्था में मगध के एक दरिद्र क्षक्षिय कुमार के साथ उसका विवाह कर दिया गया । किन्तु ससुराल जाते सामय गंगा में नाव डूब जाने से उसका सुहाग सूर्ज सूर्ज भी डूब गया, परन्तु वह न डूब सकी । एक नाविक ने उसे बचा लिया था ।

और तब से आज तक उसके जीवन में कई मोड़ आये, दुख दरिद्रय से परिपूर्ण गृह की गृहिणी बनी, वारवधू के बिलासमय जीवन को व्यतीत किया, एक श्रेठी के घर में राजरानी की तरह सुख भोगा ।

किन्तु जिस वस्तु की उसे चाह थी, वह कहीं नहीं मिली । वह निश्छल प्रेम के लिए लालायित थी । दो आत्माओं के निर्व्याज समाशगम के लिए व्यग्र थी, परन्तु हर जगह उसे मधुलोभी भ्रमरों का ही सामना करना पड़ा था । रूपोज्वल निर्जीव चमड़े को चाटने के लिये वेचैन कुत्तों की कतार में ही बराबर घिर जाना पड़ा था ।

इस प्रकार लाख कोशिश करने पर भी उसके जीवन के ऊपर अभिशाप की काली घटा-बार बार गरजती घुमड़ती रही । कभी भी शांति नहीं मिली ।

भीतर ही भीतर उसे एक अतृप्त सी प्यास सताती रहती थी. अपने प्रथम विवाहित जीवन के लिए, अपने क्षण भर के साथी अवोध प्रथम पति के लिए , उसके हृदय में निरंन्तर अदम्प लालसा लगकी रहती थी। किन्तु उसकी प्राप्ति अब असंभव थी । सो जीवन की कटुनिक्ता से ऊबकर शांति के लिये उसने भिक्षुणी का जीवन स्वीकार किया, परन्तु यहां भी उसे शान्ति न मिल सकी ।

बिहारों का आंतरिक वाम मार्ग उसकी इंद्रियों को सयम की ओर उन्मुख करने की अपेक्षा विषयों की ओर प्रेरित करने में ही अधिक सहायक सिद्ध हुआ । फलत: आडम्बरमय असत्य जीवन व्यतीत करती हुई सन्यान्वेषिणी धर्म मित्रा मन और आत्मा के संघर्ष में निरन्तर घर्षित होती हुई किसी तरह जी रही थी ।

अभी उसका बीसवाँ वर्ष चल रहा था । इस अल्प कालमें ही उसे इतने पापड़ बेलने पडे थे कि जीवन के आगे की दूरी को देख कर उस का रोम रोम कांप जाता था ।

इसी समय वीरभद्र धर्ममित्रा के कुटीर के द्वार पर उपस्थित हुआ। किन्तु उसे चिन्ता मग्न देख कर द्वार पर ही ठिठक गया।

वीरभद्र को देखकर धर्ममित्रा ने सहज शान्तस्वर में कहा स्वागत है आइए।

भीतर आकर धर्ममित्रा को अभिवादन करने के उपरान्त वीरभद्र बोला, भन्ते,कुसमय में उपस्थित होकर मैंने आपको कष्ट दिया है।

क्षमा चहता हू।

आसन ग्रहण कीजिए। आपके शुभागमन से मैं प्रसन्न हूं।
धर्ममित्रा के सामने बिछे हुए कुशासन पर बैठ कर वीरभद्रबोला, भन्ते कल आपके दर्शन से धन्य हो गया। जीवन की वितृष्णाओं ऊबे हुए मन को आपके बचनामृत से शान्ति सीमिली है।
तनिक सा हंसकर धर्ममित्रा बोली' वैसी शान्ति भ्रान्तिमय होती है। सत्य शान्ति तो साधना से प्राप्त होती है।

भन्ते साधना के लिए निदेर्श की आवश्यकता होती है। अतः मुझे आशा है कि उस निर्देश को आपसे प्राप्त कर मैं साधनारत हो सकूंगा नहीं मैं उस योग्य नहीं हूं।

क्यों भन्ते ?

झूठ क्यों बोलू ? अभी मुझे स्वयं सच्ची शांति नहीं मिल सकी है।

तनिक रुककर वीरभद्र बोला, हो सकता है,किसी विषेषकारण से आप अशान्त हों किन्तु मेरे बिचार मे आप में वह शक्ति है कि आप दुसरे को शान्ति दे सकती हैं।

मुस्कराकर धर्ममित्रा बोली, जिज्ञासु पुरुष आप जिसे शान्ति समझते है वह अशान्ति का उद्गम स्थान है।

नही समझा।

समझने की बड़ी बात नहीं है। आपको भिक्षुणी धर्ममित्रा से नहीं बल्कि धर्ममित्रा रूपी सुन्दरी युवती से शान्ति प्राप्त होने की प्रतीति हुई है।

वीरभद्र का अन्तर काँप गया, इस स्पष्ट भाषिणी बुद्धिमती युवती की प्रतिभा से वह अभिभूत हो उठा। कुछ रुक कर धीरे से बोला, आप ऐसी त्रिकालज्ञा के सामने झूठ बोलने का पाप कौन कर सकता है ? किन्तु भन्ते, इतना सत्य है। कि आपके संपर्क से मुझे शान्ति सीमिली क्यों कैसे इसके विश्लेषण की शक्ति मुझ में नहीं है। हो सकता है, आपका कथन ही सत्य हो। तीक्ष्ण दष्टि से वीरभद्र को देखकर धर्म मित्रा ने पूछा, आप कहाँ के रहने वाले हैं ?

गुप्तचर का कार्य करते हूए कूटनीति का पालन करने वाले वीरभद्र के लिए झूट और सच में बहुत कम का अन्तर था, उसे प्राय: प्रतिदिन अपने परिचयको छिपानेके लिए कई बार झूठ बोलना पड़ता था किन्तु समय धर्ममित्रा के सामने झूठ बोलने में उसेआन्तरिक कष्ट सा प्रतीत हुआ। फिर भी अभ्यास वश कुछ रुक कर बोला, भन्ते, में वाराणसी जनपद का निवासी हूं।

यहाँ कब तक रहिएगा ?

एक दो दिनों में जाने वाला था, किन्तु अब आपके उपदेशामृत के लिए उस बिचार में परिवर्तन हो गया है।

धर्ममित्रा बोली, आपको अपने विचार में परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होगी यह क्यों ?

'काल के' पुरइत ध्वज, मेले के बाद मैं स्वयं यहाँ से चली जाऊंगी।

क्या यह स्थान अशान्त कर हो गया है ? ह गया है नहीं, हो सकता है।

कुछ विचार कर वीरभद्र बोला, मालूम होता है "पुरइतध्वज"

मेले में कोई गड़बड़ी होगी, । धर्ममित्रा ने चौंक कर वीरभद्र को देखा । रुककर बोली, नहीं तो ।

धर्ममित्रा पर तीक्षण दृष्टि डाल वीरभद्र बोला, जो हो उससे मेरा कोई मतलब नहीं किन्तु मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप अपने साथ मुझे भी ले चलिए ।

मुस्कराकर धर्ममित्रा ने पूछा बिना यह जाने कि मैं कहां जाऊंगी आप मेरे साथ चलने के लिए तैयार है ?

मैं आपके साथ नरक में जा सकता हू ।

धर्ममित्रा का हृदय गुदगुदा उठा, आर्द्र होगया, न जाने क्यों, वीरभद्र के प्रति कल के प्रथम साक्षात कार से ही चतुरा धर्ममित्रा के मन में आकर्षण सा हो गया था । यद्यपि उसके मनमें वीरभद्र के प्रति संशप भी हो रहा था कि हो सकता है,यह कोई गुप्तचर हो, तथापि एक अनजानें आकर्षण के कारण उससे अपना संबन्ध तोड़ना भी उसे प्रिय प्रतीत नहीं होता था अतः धर्ममित्रा बोली, विश्वास कीजिए मैं नरक में नही जाऊंगी, किन्तु मुझसे छलकरने वाले को तो अवश्य नरकमें भेज दूंगी वीरभद्र का हृदय कांप गया किन्तु अपने को सम्यस्थिर कर उसने पूछा .तब,आप किस देश को अलंकृत करने जा रही है ?

उज्जयिनी'जाना चाहती हूं

वहां तो शकों का शासन है ?

है तो पर बुरा क्या है ? वे लोग भी पूर्ण धर्म भीरु है और तथागत के धर्म के ऊपर उनकी पूर्ण आस्था भी है ।

भन्ते जो कुछ हो, किन्तु वे है तो विदेशी ?

भद्रपुरुष,ततागत के धर्मकी दष्टि से देश और काल को सीमापर विचार करना संकीर्णता का द्योतक है हम लोगोंको केवल यही देखना है कि वे

लोग बौद्ध धर्म पर आस्था रखने वाले है तथा उसके प्रचार प्रसार के लिए प्रयत्न शील हैं,

वीरभद्र को अब यह समझने में बिलम्भ नही हुआ कि धर्मके नाम पर ही शकों के द्वारा धर्ममित्रा ठगी गई है। होसकता है कि इसमें बौद्ध पीठाधिपति का भी सहयोग हो अत: उसे निश्चय होगया कि राजकुमारी ध्रुवस्वामिनी के अपहरण में यहभी पूर्ण सहयोग देगी ?

उसने पूछा, क्या यहाँ भी कोई उज्जयनी का शक रहता है ?

धर्ममित्रा ने तीक्षण दृष्टि से वीरभद्र को देखा कुछ देर रुककर उसने पूछा, क्या शकों से आप को घृणा है ?

वीरभद्र अपने प्रश्न की असंगत समझ गया। सुधार ने की दृष्टि से बोला, नहीं, नहीं, मैं तो व्यक्तिगत रूप से उनका प्रसंशक हूं। बहुत से शक व्यापारियों से मेरी मित्रता है।

धर्ममित्रा कुछ आश्वस्त होकर बोली अच्छा, एक आवश्यक कार्य से अब मुझें बाहर जाना है। आप अभी यहां विश्राम कीजिएगा ?

नहीं, मुझे भी चलना है। चलिए, चतुष्पथ तक साथी ही लता हूं ?

धर्ममित्रा के साथ वीरभद्र चला। उसके मन मैं अपहरण संबंधी योजना की जानकारी पाने के लिए उत्कंठा बढ़ गई थी। किन्तु शीघ्रता में थोड़ी भूल हो जाने से ही विपक्षियों के सावधान हो जाने का भय था। अत: वह सतर्कता पूर्वक धर्ममित्रा का पीछा करना चाहता था कुछ आगे जाकर वीरभद्र बोला, भन्ते, तो मैं भी निश्चय कर लूं कि मुझे भी कल आपके साथ चलना है ?

नहीं आप मेरे साथ नहीं चल सकते हैं। मुझे बीच में और कई काम हैं। हां, आप उज्जयिनी में आकर मिल सकते हैं।

हंस कर वीरभद्र बोला, इस व्यवस्था में तो मुझे दंड और अनुग्रह दोनों दृष्टिगोचर होते हैं।

दंड कैसा ?

अशिष्टता क्षमा हो तो, कहना चाहता हूं कि अब मेरे लिए देवी का संपर्क ही सर्वथा प्राप्त वस्तु है। उससे बीच में वंचित किया जाता हैं यह दराड है किन्तु आगे दर्शन देने का आश्वासन मिलता है, यह अनुग्रह है।

इसके पहले भी कईवार लोगों ने धर्ममित्रा के सामने प्रणय निवेदन किया था। किन्तु इस समय वीरभद्र द्वारा अपेक्षाकृत शुष्क रूप प्रकटित अनुरा भाव भी विशेष आनन्ददायक प्रतीत हुआ। अत: धर्ममित्र नम्र स्वर से बोली. मन बड़ा रहस्य मय होता है, पता नहीं क्यों मुझे भी प्रतीत होता है कि मैं आपसे पूर्व परिचित हूं। उज्जयिनी में आपको देख कर मुझे भी प्रसन्नता होगी।

वीरभद्र के कठोर कर्तव्य शील हृदय में भी धर्ममित्रा के प्रति क्रमश: अनजाना मधुर भाव बद्धमूल हो रहा था। यद्यपि उसने प्रारंभ में गुप्तचर के रुप में अनुरक्ति का अभिनय शुरू किया था।किंतु धीरे-धीरे अल्प काल में ही किसी पूर्व संस्कार के कारण वह वास्तविकता का रूप ले रहा था। फलत: उसे अपने मूल कार्य में असुविधा का बोध होने लगा। अत: धर्ममित्रा से शीघ्र अलग हो जाने का निश्चय कर वह भन्ते बोला, भन्ते एक अन्य आवश्यक कार्य का स्मरण हो गया है, इसलिए मैं अब विदा केलिए आज्ञा माँगता हूं।

मुस्कराकर धर्ममित्रा बोली, सामने ही तो चतुष्पथ है, वहाँ से चले जाइएगा। और आपको असुविधा न हो तो सन्ध्या समय मेरा अतिथ्य-ग्रहण करें।

वीरभद्र ने एक दुर्भेदय विवशता का अनुभवकिया, फिर भी बोला कृपाके. लिए कृतज्ञ हु। अवश्य दर्शन करूंगा।

इसी समय अचानक मार्ग के पार्श्वस्थ वृक्ष की ओर में वीरभद्रको श्रुतिधर दिखलाई पड़ा। वीरभद्र ने अपरिचित की तरह उससे पूछा क्यों भाई, पुरहूतध्वजका मेला कल ही है ?

हाँ है। यहां रहते हुए भी आपको मालूम नहीं है ?

विदेशी हूं इसलिए ठीक मालूम नहीं था।

अब तो मालूम हो गया ?

जी। और उससे मुझे लाभ भी होगा।

धर्ममित्रा कुछ आगे बढ़कर खड़ी हो गई थी। वीरभद्र के इस आप्रासंगिक प्रश्न से वह चौक पड़ी। साथ ही, उसकी सतर्क दृष्टि ने वीरभद्र के गुप्त इंगिन को भी देख लिया। धर्ममित्रा के मुखपर अचानक क्रूर कठोरता का भाव आ गया। आँखों में हिंसक चमक कौंध गई क्योंकि नारी स्वभावत: जैसे शीघ्र विश्वासिनी बन जाती है वैसे ही विश्वास घात होने पर अतिशीघ्र क्रूर भी बन जाती है। सो उसने वीरभद्रको दराड देने का निश्चय कर लिया।

उसने कुशल नटी की तरह भाव परिवर्तन कर पूछा, भद्र चलने में विलम्ब है ?

नहीं भन्ते, चलता हूं कहकर वीरभद्र चल पड़ा।

कुछ पद चल कर सहसा वीरभद्रका हाथ छूकर अत्यन्त मधुर स्वर में धर्ममित्रा बोली, भद्र, मैंने अपने विचार में परिवर्तन कर लिया है।

क्या ?

अब आपका साथ छोड़ना मुझे कष्ट कर प्रतीत होता है।

क्या आप मेरे साथ उज्जयनी चल सकेंगे ?

बड़ी प्रसन्नता से, यह मेरा सौभाग्य है।

तब आइए, उज्जयिनी के एक शक व्यापारी से आपका परिचय करादूं। उनके साथ ही मुझे चलना है।
वीरभद्र को झटका सा लगा। क्योंकि,शकभिशु रुप धारी पूर्व परिचित गुप्तचर से सामना हो जाने का भय हुआ। उसने पूछा,उस श्रेष्ठी का आवास स्थान कहाँ है ?

यहाँ से पश्चिम वापी के किनारे।

वीरभद्र प्रसन्त हो गया क्योंकि यह स्थान धनदास के महल से भि था। उसे विश्वास हो गया कि यह स्थान भी शकों का दूसरा अडडा है। और संभवतः रुद्रसेन यही रहता हो। उसे स्पष्ट देखने का अवसर पाकर उसे आन्तरिक आनन्द प्राप्त हुआ। सो वह उत्साह से भर उठा। उमंग से बोला,इस अनुग्रह से मैं धन्य हो गया।

मुस्कराकर धर्ममित्रा बोली, आपने मुझे अपने बन्धन में डालने क पूरा आयोजन कर लिया है,और पता नही क्यों, सब जानते हुए भी मैं विवस सी होती जा रही हू।

उल्लसित स्वर में वीरभद्र बोला, नहीं भन्ते, आप बंधन में आयेंगी इसका मुझे अभी विश्वास नहीं है। किन्तु मैं अपने को वद्ध मानता हूं

धर्ममित्रा खुलकर हंस पडी। कुछ रुक कर बोली, जो दूसरे को। बांधने जाता है, उसे स्वयं भी बंधना पड़ता है।फिर तनिक रुक कर बोली देखिए, इसी सामनेवाले घर में हम लोगों को चलना है।

वीरभद्र ने देखा, वापी के पश्चिम नट पर आम्रवृक्षों से घिरा,एक पुराना महल है वहाँ कोई पुरुष दिखलाई नही पड़ा गहरी निस्तब्धता- थी। वीरभद्र का विश्वास दृढ़ हो गया कि इसी शून्यागार में रुद्रसिंह छिपा हुआ है। अतः अपनी अप्रत्याशित सफलता को इतना समीप देखकर वह पुलक उठा।

उसने सोचा, अब रुद्रसिंह के षडयंत्र को विफल कर देना कोई कठिन नहीं है। और माननीय कुमार भट्ट के सामने इसका श्रेय मुझको ही प्राप्त होगा इसमें संदेह नहीं।

इसी प्रकार के विचारों में खोया हुआ वीरभद्र धर्ममित्रा के साथ महल के द्वार पर पहुंचा।

धर्ममित्रा ने द्वार पर थपकी दी। कपाट खुले। सामने वलिष्ठ तथा क्रूर-कठोर आकृति वाला व्यक्ति दिखलाई पड़ा। उसने शुष्क स्वर में पूछा, भन्ते, आगमन में इतना विलम्ब क्यों हुआ ?

वीरभद्र की ओर इंगित कर धर्ममित्रा बोली। इन मान्य अतिथि की अभ्यचर्ना में विलम्ब हो गया है। अब ये आपका मधुर आतिथ्य स्वीकार करने के लिऐ प्रस्तुत हुए हैं। और, धर्ममित्रा विशेष इंगित कर हंस पड़ी।

वीरभद्र को संदेह हुआ कि शायद धर्ममित्रा उसे जान गई है और यहां लाकर फंसाना चाहती है। सो, उसकी तीक्षण बुद्धि ने विपत्ति के बढ़ते हुए विद्रूप पैरों को पहचान लिया। अतः वह पलायन के विचार से पीछे की ओर खिसका। किन्तु अब तक बहुत विलम्ब हो गया था। उस क्रूर व्यक्ति ने तेंदुए सा उछलकर वीरभद्र को पकड़ लिया। और तत्क्षण अन्य चार व्यक्तियों ने आकर उसे विवश बना दिया।

फलतः वीरभद्र बांधकर भीतर पहुंचा दिया गया। उसका विश्वास सत्य निकला। वहां रूद्रसिंह था।

रुद्रसिंह ने पूछा, भन्ते, यह कौन है ?

धर्ममित्रा बोली, देव, यह धर्म जिज्ञासु के रूप में मेरे पास पहुंचा था पहले मुझे सन्देह नही हुआ। किन्तु मार्ग में इसनें अपने किसी सहयोगी को इंगित किया जिससे निश्चय हो गया है कि यह कोई गुप्तचर है। इसकी उचित व्यवस्था करदेनी चाहिए।

गंभीर स्वर से रुद्रसिंह बोला, भन्ते इसकी व्यवस्था तो होजायगी किंतु इसे यहाँ लाकर आपने ठीक नहीं किया है ।

संभव है इसका कोई सहयोगी पीछा कर यह स्थान देख चुका हो बाह कुछ रुक कर पुनः बोला खैर अब हम लोगों को यह स्थान छोड़ देना होगा ।

एक दूसरे व्यक्तिने रुद्रसिंह से पूछा, देव, वन्दीको कहाँ रखा जाय ?

इसे ले जाकर भूमिग्रहमें डाल दो और पता लगाओ कि यह कौन है ?

चार वलिष्ठ सैनिक वीरभद्रको घसीटते हुए भूमिग्रह की ओर ले चले ।

—(

: ३ :

श्रुतिधर ने वीरभद्र का पीछा किया। उसे वापी तीरवर्ती महल में प्रवेश करते देखा। किन्तु बहुत देर तक प्रतीक्षा करने पर भी जब वीरभद्र नहीं लौटा, तो वह चिंतित होकर लौट आया। उसने कुमार भट्ट चन्द्रगुप्त को सूचना दी। और पुरइतध्वज वाले संकेत को भी बतलाया।

चन्द्रगुप्त ने श्रुतिधर के साथ धर्मपाल को पता लगाने के लिये भेजा। रात्रि हो जाने पर महल के पीछे से श्रुतिधर और धर्मपाल ने महल में प्रवेश किया। किन्तु वह महल सूना था। वहाँ कोई नहीं था इन लोगों ने घर का कोना कोना छान डाला, किन्तु कोई फल नहीं। मिला। विवश होकर लौट आये।

आधी रात को चन्द्रगुप्त की अध्यक्षता में इनकी एक गोष्ठी बैठी

चन्द्रगुप्त ने कहा संभव है श्रुतिधर के चले आनेपर वेलोग उस स्थान को छोड़कर चले गये हों। वीरभद्र के वन्दी हो जाने से हम लोगों की बहुत बड़ी हानि हुई है। अब वीरभद्र को खोजना और उसे मुक्त करना भी हम लोगों के लिए आवश्यक कार्य हो गया। किन्तु पुरज्ञइतध्वज वाले संकेत से ज्ञात होता है, कि कल पुरज्ञइतध्वज के मेले में ही राजकुमारी के अपहरण की योजना बनी है। अतः हम लोगों को यह सोचना है। कि कैसे षड़यन्त्र को विफल किया जाय और वीरभद्र को भी मुक्त कराया जाय।

कुछ सोचकर धर्मपाल बोला, आर्य, जहां तक मुझे विश्वास है सामान्य राजधर्म के अनुसार शक लोग वीरभद्र की हत्या नहीं करेंगे। क्योंकि, गुप्तचरों की हत्या वर्जित है, इसे प्राय: सब मानते हैं। अत: अभी हम लोगों को वीरभद्र की चिन्ता छोड़कर अपहरण के षड्यंत्र को विफल कर लेने के संबंध में ही विचार कर लेना चाहिए।

चन्द्रगुप्त ने पूछा, कहो, तुमने क्या सोचा है?

धर्मपाल बोला, देव, इस पुरइतध्वज मेले में राजपरिवार प्रतिवर्ष अवश्य ही आता है। उस समय वहाँ विविध प्रकार की क्रीड़ाओं का आयोजन होता है। पुरस्कार दिये जाते हैं। सभी लोग अस्तव्यस्त रहते हैं। सो उस स्थिति मे ही किसी प्रकार की गड़बड़ी होने की संभावना है अत: उस समय ही हम लोगों को सतर्क दृष्टि रखनी होगी।

चन्द्रगुप्त ने कहा यह ठीक है, किन्तु केवल मेले में ही दृष्टि रखने से सफलता नहीं मिलेगी। मेरा विचार है कि कुछ आदमी मेंले में रहे, और कुछ आदमी शक राजधानी की ओर जाने वाले मार्ग पर रहें श्रुतिधर ने प्रसन्न कंठ से कहा, देव का विचार उत्तम है। मेले में किसी कारण से असफल होने पर मार्ग में रोक लिया जायगा।

धर्मपाल ने संदेह प्रकट किया, किन्तु वे लोग यदि यहां से दूसरे मार्ग से जाकर आगे अपनी राह पकड़ें तब क्या होगा?

चन्द्रगुप्त ने कहा, यहां दो आदमी रहें। एक आदमी पीछा करेगा, दूसरा हमें सूचना देगा। मैं मार्ग में ही रहना चाहता हूं।

धर्मपाल ने कहा, आदेश के अनुसार शंकुधर के साथ मैं यहाँ रहूंगा।

चन्द्रगुप्त ने कहा, तब शेष ६ व्यक्तियों के साथ मैं चतुष्पथ के आगे कदली गुल्मा में छिपा रहूंगा।

ऐसा निर्णय कर सभी लोग विश्राम करने के लिये चले गये। दूसरे दिन अपराह्नकाल में राजनगर के पश्चिम भाग स्थिति विस्तृत क्रीड़ा क्षेत्र अपार जनसमूह से भरा हुआ था। सुदूर जनपदों से कई दिनों में चलकर ग्रामीण जन इस राजकीय उत्सव को देखने के लिए उपस्थिति हुए थे।

उत्सव स्थल चारों तरफ से विविध वाहनों से घिरा हुआ था। कहीं शकटों के झुंड थे कहीं रथों के तो कहीं विभिन्न जाति के अश्वों का समूह हिनहिना रहा था तो कहीं हाथियों की काली घटा उमड़ घुमड़ रही थी।

मेले में विभिन्न वस्तुओं की सजी हुई दुकानों की पंक्तियां अपनी ओर लोगों को आकृष्ट कर रही थी तो कहीं नट, बाजीगर आदि अपनी कला कुशलता से जनमन मोह रहे थे।

युवक और युवतियों के दल सुरुचि पूर्ण प्रसाधनो से सजे हुए, एक दूसरे को आकृष्ट करते हुए, आन्तरिक ललति लालसा से ललकते मन वाले सोत्साह घूम रहे थे। और रतिशास्त्र में वर्णित स्पृष्टक विद्धक तथा उद्घृष्टक आलिङ्गनों कोप्राप्त करने की योजना में व्यस्त थे।

जटिल वट के शिविर की ओट में भुवनभास्कर के झुक जाने पर राज परिवार मेले में आया। उनके आने पर मेले में एक प्रकार की उमंग सी लहरा पड़ी। बहुत से लोग उनके दर्शन के लिए दौड़ पढ़े।

मेले के पश्चिम भाग में एक ऊंची वेदिका बनी थी। उस पर रजत और स्वर्ण के आसन रखे हुए थे। महाराज राजकुमार के साथ वहीं बैठ गए। वेदिका के पृष्ठ भाग में कामदार यवनिका गिरी थी, उसी के पीछे राजकुल की स्त्रियां बैठ गई।

प्रतिवर्ष के नियमानुसार महाराज के सामने कई प्रकार के क्रीड़ा कौतकों का प्रदर्शन होने लगा। सभी लोग उसे ही देखने में तन्मय हो गये।

राजकुल की स्त्रियों के साथ धर्ममित्रा भी आई थी। वह राजकुमारी ध्रुवस्वामिनी के साथ बैठी थी।

कुछ देर बाद, धर्ममित्रा ने राजकुमारी से धीरे से कहा, आर्य इन खेलों को देखने से अच्छा है कि मेले का दृश्य देखा जाय।

मुस्कराकर ध्रुवस्वमिनी ने पूछा, भन्ते, सामान्य जन की तरह मैं कैसे घूम सकती हूं?

धर्ममित्रा बोली, उत्तर वाले तट प्राचीन के कोने से मेले का बहुत बड़ा भाग दिखलाई पड़ेगा। वहीं चलिये।

चलिये कह कर ध्रुवस्वामिनी धर्ममित्रा के साथ धीरे से उठ कर कोने की ओर चल पड़ी। खेल देखने की तन्मयता में अन्य स्त्रियों ने इस पर ध्यान नहीं दिया।

वेदिका स्थल से लगभग सौ हाथ पीछे आकर धर्ममित्रा खड़ी हो हो गई और वहां के कोणस्थ पट खण्ड को हटाकर राजकुमारी को मेले का दृश्य दिखलानें लगी।

सचमुच वहां से मेले का बहुत बड़ा भाग दिखलाई पड़ रहा था। अपार जनसमूह विविध वेशभूषा विचित्र भावभंगिमा। ध्रुवस्वामिनी तन्मय होकर देखने लगी।

अचानक इसी समय पूर्व दिशा में तथा दक्षिण दिशा में भयानक कोलाहल उठा। दो मतवाले हाथी विगड़ गए थे। उन्होंने कई हत्यायें कर दीं।

मेले में भगदड़ मच गई। विचित्र विश्रृंखलता उत्पन्न हो गई। रक्षक सैनिक गण संभालने की कोशिश करने लगे।

कौन कहां है, इसकी सुधि किसी को नहीं रही । ध्रुवस्वामिनी वेदिका की ओर जाने के लिए लौटी, किन्तु उसका हाथ पकड़ कर धर्म मित्रा बोली, आर्य, उधर ही खतरा है । कुछ देर यहीं रुक कर परि-स्थिति देख लें ।

इसी समय पट प्राचीन से सटे, ध्रुवस्वामिनी के सामने एक रथ आकर खड़ा हुआ । सारथी ने विनय पूर्ण स्वर में कहा, राजकुमारीजी, महाराज ने आपके लिए रथ भेजा है। यहां संकट उपस्थित है शीघ्रता कीजिए ।

ध्रुवस्वामिनी ने पूछा, और लोग कहां है ।

वे लोग जा चुके हैं ?

ध्रुवस्वामिनी ने घूम कर देखा, सचमुच यवनिका के इधर कोई नहीं था ।

फिर भी वह क्षण भर ठिठकी रही ।

धर्ममित्रा ने आकुल विनय के साथ कहा आर्य सब लोग चले गये, बिलम्ब मत कीजिए ।

राजकुमारी जाकर रथ में बैठ गई । उसने धर्ममित्रा के साथ चलने के लिए कहा, किन्तु मुझे आवश्यक कार्य से बिहार जाना है " यह कहकर धर्ममित्रा खिसक गई ।

रथ का पर्दा गिरा दिया गया । रथ भाग चला । कुछ देर में ही रथ जनख से दूर चला आया । राजकुमारी ने समझा कि अब वह शीघ्र राजमहल में पहुंच जायगी । किन्तु समय बीतता गया, रथ रुका नहीं ।

अब राजकुमारी को संशय हुआ । उसने पर्दा हटाकर देखा । रथ राजमहल से विपरीत दिशा की ओर जा रहा था । राजकुमारी चौंक

पड़ी उसने घबड़ाकर साँरथी के पूछा, रथ कहां ले जा रहे हो ?

सारथी कुछ नही बोला ।

राजकुमारी भय से कांप गई फिर भी अपने को किसी तरह संयत कर उसने डांटकर कहा, रथ रोको, उधर कहां जाते हो ?

इसी समय ध्र ुवस्वामिदी ने देखा, पन्द्रह सशस्त्रअश्वारोही सैनिक पंथ के पार्श्व भाग से निकलकर रथ को घेर कर चलने लगे हैं । साथ ही, ध्यान से देखने पर उसे विदित हो गया कि अवध की वेशभूषा में होने पर भी ये शक सैनिक हैं ।

सो अब ध्र ुवस्वामिनी को निश्चय हो गया कि वह षडयन्त्र में फ़ंस गई है, उसका अपहरण किया जाता है ।

उसने कातर दृष्टि से अयोध्या की ओर देखा । जोर से चीख उठी किन्तु अब तक रथ निर्जन स्थान में आ गया था । चीखने का कोई फल नही हुआ । ध्र ुवस्वामिनी का शरीर पीपल के पत्ते की तरह काँपने लगा समूचे शरीर से पसीना झरने की तरह झरने लगा । आंखों से आंसू की धारा बह चली । मुंह पीला हो गया ।

वह सोचने लगी 'जन शकों से मैं बचपन से ही घृणा करती आई हूं, उन्हीं शकों में अब मिलने जा रही हूं, हायरे दुर्भाग्य, जिस शरीर के सौदर्य पर मुझे अभिमान था, जिसे ईश्वरीय वरदान मानती थी वहीं सौदर्य बलात् किसी घृणित शक के अग में उपभोग की वस्तु बन जायगा । नहीं नहीं, यह कभी नही होगा । मैं इस शरीर को नष्ट कर दूंगी ।

ऐसा सोचकर ध्र ुवस्वानमिनी रथ से कूदने के लिए तेजी से लपकी । किन्तु सतर्क रुद्रसिह देख रहा था । उसने विद्य ुदवेगसे अपने अश्व को रथ के द्वार पर कर दिया, और हंसकर बोला, सुंदरी मैं शकसम्राट रुद्रसिह हूं । बहुत दिनों से तुम्हारी उपासना करता हूं । अब अपने सेवक को अपनी कृपा से अनुगृहीत करो ।

बुभूक्षित सिंह को देखकर जैसे मृगी मरणासन्न हो जाती है, उसी प्रकार ध्रुवस्वामिनी भी मृतप्राय हो गयी । उसे प्रतीत हुआ कि वासनाकुल लोलुप रुद्रसिंह अपनी बाहों को फ़ैलाकर इसे अंकगत करने के लिए बढ़ रहा है । ध्रुवस्वामिनी चीखकर पीछे हट गई और उसने आंखें मूद ली सिर नीचे कर लिया ।

रुद्रसिंह अट्टहास कर बोला, सुंदरी, समस्त आर्यावर्त के इस भावी सम्राट से तुम्हें भय करने की आवश्यकता नही है । भले इसके भाल की भ्रुभंगिमा से भारत के भीत भूपालों की भाग्य लिपि बदल जाती हो, परंतु यह तुम्हारी तनिक सी भ्रू भंगिमा को देख कर ही तुम्हारे चरणों पर गिर जायगा, इसमें संशय का स्थान मत दो ।

रुद्रसिंह के शब्द भारत गौरवभिमाननी ध्रुवस्वामिनी के कानों में पिघले हुए शीशे की तरह पड़े । उसके हृदय में आग लग गई । रुदन का प्रबल आवेग अन्तर को आलोडित कर बाहर निकलने के लिए उछला, किन्तु वह मुंह आंचल देकर रोकने का असफल प्रयत्न करने लगी ।

इसी समय पथ के पार्श्व भाग से निकलकर सात अश्वारोही रथ के सामने खड़े हो गये । उनमें से एक ने सिंह के दहाड़कर कहा, रथ रोको, और जीना चाहो तो रथ छोड़कर चुपचाप चले जाओ ।

ध्रुवस्वामिनी ने चौंककर देखा । रथ रोकने वाला राजकुमार चंद्रगुप्त था । उस समय ध्रुवस्वामिनी को कैसी प्रसन्ता हुई इसका वर्णन मेरी कलम से संभव नहीं मैं इतना ही कह सकता हूं कि फांसी का फ़ंदा गले में पड़ जाने पर बन्दी को छुटकारे का हुक्म पाकर या अपार समुद्र में डूबते हुए को अचानक नावपाकर जैसी खुशी होती हैं वैसी ही खुशी ध्रुवस्वामिनी को हुई । सो वह अपूर्व आनन्द के साथ विलक्षण उत्सुकता से चन्द्रगुप्त को देखने लगी ।

अप्रत्याशित रूप में रथ को रोके जाते हुए देखकर रुद्रसिंह आगे आकर कड़क कर बोला, आग में गिर कर जलने वाले पतंग की तरह आत्महत्या के लिए आतुर मूर्ख तुम कौन हो ?

हंसकर चन्द्रगुप्त ने कहा, मानवता को कलंकित करने वाले अविवेकी चोर लम्पटों को जलानेवाली आग ।

रुद्रसिंह के सामने अधिक कथोपककथन के लिए समय नहीं था ।

उसने देखा कि केवल तीन आदमी पन्द्रह आदमियों की राह रोके खड़े हैं। निर्बलता को देखकर क्रोध अपनी पत्नी हिंसा के साथ टूट पड़ता है । उसका पुत्र अविवेक भी हमले में साथ देता है । फलतः लंका काण्ड शुरू होने में देर नहीं होती है ।

सो रुद्रसिंह ने प्रबल वेग से चन्द्रगुप्त के छोटे दल पर आक्रमण कर दिया । प्रारम्भ में प्रतीत हुआ कि मत वाला गजेन्द्र जैसे क्षुद्रशृगाल को अनायास कुचल डालता है चंद्रगुप्त का दल कुचल जायगा और इस तूफान में तिनके की तरह उड़ जायगा । किन्तु यह सच नहीं हुआ । जैसे छोटा सा मृगेंद्र का छौना भारीभरकम देह वाले गजराज के आक्रमण को विफल कर देता है, वैसे ही रुद्रसिंह के दल का आक्रमण विफल हो गया ।

रुद्रसिंह के विश्वास पर धक्का लगा । वह क्रोध से विफर उठा। सो उसने, क्रोधान्ध भैंसे की तरह दूने वेग से पुनः आक्रमण कर दिया ।

भयानक युद्ध शुरू हो गया ।

किन्तु वाहरे चन्द्रगुप्त का रण कौशल, उसकी नागिन की जीभ की तरह लपलपाती तलवार का वार कब किधर होगा, यह किसी के लिये समझना आसान नहीं था । चन्द्रगुप्त ने अनायास रुद्रसिंह के आक्रमण को रोककर प्रत्याक्रमण शुरू कर दिया, जिससे कुछ देर में ही रुद्रसिंह के चार सैनिक धराशायी हो गए ।

उस युग में रुद्रसिंह अपने को अप्रतिम योद्धा मानता था। बात भी सच थी। उसकी तरह युद्ध कला में निपुण तथा साहसी व्यक्ति मिलना कठिन था।

परन्तु उस समय अप्रत्याशित रूप से इस अद्वितीय प्रतिद्वन्दी को सामने पाकर उसे सोचने पर विवश होना पड़ा कि यह कौंन है? उसने अपने सहचर सेनापति से जिज्ञासा की।

सेनापति ने बतलाया कि यह मगध का राजकुमार चन्द्रगुप्त मालुम पड़ता है।

चन्द्रगुप्त जिस समय तक्षशिला में अध्यन करता था उसी समय उसकी शस्त्र निपुणता की ख्याति फ़ैल गई थी यह बात रुद्रसिंह को भी मालूम थी। किन्तु अब तक उसे चन्द्रगुप्त को देखने का अवसर नहीं मिला था। सो उसी चन्द्रगुप्त को इस समय अपने सामने अचानक पाकर रुद्रसिंह क्षणभर के लिए चकित हो गया। मनमें अनुत्साह आ गया। परन्तु तत्क्षण अलौकिक सुन्दरी तथा हस्तगता ध्रुवस्वामिनी के सामने अपने पराभाव को देखकर उसका उदंड अभिमान तिलमिला उठा। अतः अपने प्राणों को हथेली पर वह पुनः बाज की तरह चन्द्रगुप्त पर झपट पड़ा।

फलतः तत्कालीन विश्व के सर्वश्रेष्ठ दोनों योद्धाओं में पुनः युद्ध शुरू हो गया।

दोनों पक्ष के सैनिक स्तब्ध होकर विस्मित बिस्फारित नयनों से लड़ना छोड़ कर युद्ध देखने लगे।

नागिन की तरह क्रोध से कांपती हुई सौतें जिस तरह एक दूसरे को मार डालने के लिए परस्पर गुंथ जाती है, वैसे ही सनसनाती तलवारें परस्पर गुंथ गईं।

फिर युद्ध का रूप बदला। सन सन करती तलवार एक दूसरे का सिर काटनें के लिए लपकनें लगी। यों एक के आघात करते समय मालूम पड़ता कि दूसरे का सिर निश्चित रूप से उड़ गया, किंतु पल भर में पासा पलट जाता। उसका सिर अभिमान से आसमान में ऊँचा तना दीख पड़ता, और, दूसरे के सिर के उड़ने की स्थिति दिखलाई पड़ती।

दोनों के शरीर से रक्त बह रहा था। दोनों के शरीर निर्धूम अंगारे की तरह प्रतीत हो रहे थे। अथवा मालूम पड़ता था कि निर्झर वाले गैरिक पर्वत परस्पर द्वन्द युद्ध में तल्लीन हो रहे हैं।

"राम रावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव" के समान उन दोनों का युद्ध भी अनुपमेय था।

इस प्रकार कुछ देर तक युद्ध चलते रहने के बाद। सहसा चन्द्रगुप्त ने बड़े वेग से खड्ग का आघात किया, जिससे रुद्रसिंह का खड्ग भग्न हो गया।

और वह निश्शस्त्र हो गया। इसे देख कर समस्त विपक्षियों के मुख से एक साथ चीख निकल पड़ी। उन्हें विश्वास हो गया कि अब रुद्र सिंह का जीवित रहना संभव नहीं है।

किन्तु खड्ग को नीचे कर चन्द्रगुप्त नें गंभीर स्वर से कहा, रुद्र-सिंह, भारतीय संस्कृति में निश्शस्त्र पर आघात करना अनुचित माना जाता है अतः मैंतुम पर आघात नहीं करूंगा। दूसरा शस्त्र ले लो।

चन्द्रगुप्त की इस महाशयता से रुद्रसिंह अभिभूत हो उठा, उसके मन में चन्द्रगुप्त के प्रति आदर का भाव उत्पन्न हो गया। फिर भी, उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ। उसने झट से दूसरे सैनिक के हाथ से तलवार ले ली। और, पैंतरा बदल कर युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गया।

किन्तु इसी समय दूर से अयोध्या राज्य के कुछ अश्वारोही सैनिक इसी ओर आते हुए दीख पड़े। अतः रुद्र सिंह घबरा उठा। उसने समझ लिया कि अब चन्द्रगुप्त पर विजय पाना असंभव है। लेकिन ध्रुवस्वामिनी के अलौकिक सौन्दर्य को छोड़ कर जाना भी उसके वश की बात नहीं थी। सो, विवशता की इस स्थिति में जीवन में पहले पहल उसे विचित्र सी जलन का अनुभव होने लगा।

उसने आतुरता से एक दृष्टि ध्रुवस्वामिनी पर डाली, फिर आते हुये सैनिकों को देखा। उसके मन में इच्छा हुई कि चन्द्रगुप्त पर प्रबल वेग से आक्रमण कर दे। और, उसके शरीर को खण्ड खण्ड कर पैरों से रौंद दे। लड़ते लड़ते अपने प्राण भी दे दे।

किन्तु, तत्काल जब उसे अपने राज्य का स्मरण हुआ, तो एक स्त्री के लिये सब कुछ छोड़ने की भावुकता अधिक टिक नहीं सकी।

फलतः प्रतिरक्षा की स्थिति में सजग रहता हुआ वह अपने साथियों के साथ भाग चला।

चन्द्रगुप्त ने पीछा नहीं किया।

उनके चले जाने पर वह रथ के समीप गया। और राजकुमारी को लक्ष्य कर विनीत स्वर में बोला, राजकुमारी जी, अब आप दुष्ट दस्युओं के चंगुल से बच गई हैं। यह सेवक समय पर उपस्थित हो गया, नहीं तो अनर्थ हो जाता।

ध्रुवस्वामिनी रथकी यवनिका को हटा कर नीचे उतरी। हाथ जोड़ कर बोली, महाराज कुमार को सेविका प्रणाम करती है। और इस जीवन रक्षा के लिये आजन्म कृतज्ञ रहने की शपथ लेती हुई राज-प्रसाद में चलने के लिये प्रार्थना करती है।

चन्द्रगुप्त राजकुमारी को देख कर चौंक उठा। उसके समस्त शरीर में बिजली सी कौंध गई। उसके मुख से अनायास निकल गया,

ओह, देवदूती। मुस्कराकर ध्रुवस्वामिनी ने कहा, आर्य, मैं देवदूती नहीं, अयोध्या राज्य की दूती हूं।

किन्तु, मैंने जो देखा था, उसमें कुछ भी तो अन्तर नहीं है ?

तनिक सा हँस कर ध्रुवस्वामिनी बोली, आर्य प्रार्थना स्वीकार करने की कृपा करें। वहीं पर संशय दूर करने का प्रयत्न करूंगी।

अब तक अयोध्या के सैनिक भी आ गये थे। उनमें अयोध्या का भट्टाश्वपति भी था। ध्रुव स्वामिनी ने उससे कहा, आर्य मगध के मान्य महाराज कुमार ने मेरे जीवन की रक्षा की है। मैंने इनसे राजप्रसाद में चलने की प्रार्थना की है। आप इसकी व्यवस्था करें।

और पश्चात्, भट्टाश्वपति के साथ समस्त सैनिकों ने चंद्रगुप्त की विर्नात अभ्यर्थना की। राज प्रसाद में पधारने के लिए विनम्र अनुरोध किया। सो, चंद्रगुप्त उनके साथ राजप्रासाद की ओर चल पड़ा।

)—(

अयोध्या के राजप्रासाद के एकान्त कक्ष मे राजकुमार चंद्रगुप्त अकेले लेटा हुआ था। रुद्रसिंह के साथ जो युद्ध हुआ था, उसमें उसे कई आघात लगे थे। अयोध्या के राजवैद्य ने उन पर औषधि का लेप लगा कर पट्टी बाँध दी थी, जिससे अब तक व्रण की वेदना समाप्त हो गई थी। चन्द्रगुप्त को पुनः पूर्ववत् स्फूर्ति का अनुभव होने लगा था।

सन्ध्या हो गई थी। दीप जल चुके थे। इसी समय ध्रुवस्वामिनी चंद्रगुप्त के लिये वृद्ध वैद्य द्वारा निर्दिष्ट 'मुद्गपूष' लिये हुये आई। और, उसे पर्यङ्क के समीप काष्टपट्टिका पर रख कर मधुर स्वर से बोली, देव मधुर विविध भोज्य पदार्थों की जगह इस अरुचिकर पथ्य पेय को देते हुये मुझे बहुत कष्ट हो रहा है, फिर भी, दूसरा उपाय नहीं है। शरीर रक्षा के नाम पर इसे स्वीकार करने की कृपा करें।

मंसनद के सहारे कुछ उठ कर मुस्कराते हुये चन्द्र गुप्त ने कहा, इसकी चिन्ता न करें। आरोग्य के लिये यही उचित है।

साथ ही, आपके कर-कमलो के संपर्क से यह मेरे लिये अमृत तुल्य है। फिर तनिक रुक कर ध्रुवस्वामिनी पर एक दृष्टि डाल कर, चंद्रगुप्त ने कहा, मैं राजकुमारी जी से पुनः प्रार्थना करता हूं कि अब मेरे संशय को मिटाने का कष्ट करें।

समीपस्थ आसन पर बैठ कर ध्रुवस्वामिनी ने पूछा, कहिय, कैसा संशय ?

क्या उस रात्रि में मैंने आपको ही देखा था ? इसे जानने की इतनी उत्सुकता क्यों है ?

उस दर्शन का मेरे हृदय हर अमिट प्रभाव पड़ा है। किस प्रकार का ?

गूंगे के गुड़ के स्वाद की तरह अवर्णनीय। विलक्षण।

ध्रुवस्वामिनी का शरीर रोमांचित हो गया। तनिक रुक कर धीरे से बोली, हाँ, वहां मैं ही गई थी, किन्तु आप वहां से लुप्त कैसे हो गई ?

मूर्ति के पीछे एक गुप्त सुरंग है। उसी राह से मैं निकल आई थी।

कुछ आश्वस्त होकर चन्द्र गुप्त ने पूछा, किन्तु आपको वहाँ मेरे जाने का पता कैसे मिला था ?

इस राज्य पर शकों की कुदृष्टि देख कर मुझे चिन्ता थी, सो इधर आपका ध्यान आकृष्ट करने के लिए मैंने दूत भेजा था। उसने गुप्त रूप से आपके निकट सूचना पहुंचा दी थी। साथ ही गुप्त रूप से वह आपके पीछे यहाँ तक आया था। उसी के द्वारा मन्दिर में जाने की बात मालूम कर मैं उस समय वहां गई थी ।

एक सामान्य गुप्तचर के द्वारा अपने रहस्य को इस प्रकार उद्घाटित होते देख कर चन्द्रगुप्त को दुःख हुआ। अतः बिना प्रश्न किये चुप होकर वह उसी विषय को सोचने लगा।

चन्द्रगुप्त को चिन्तित देख कर ध्रुवस्वामिनी नें पूछा, आर्य, क्या यह मेरी धृष्टता अनुचित हुई है ?

नहीं मैं, दूसरी बात सोचता हूं।

उसे जान सकती हूं ?

मुझे चिन्ता होती है कि यहां आने की मेरी योजना गुप्त थी। फिर आपके गुप्तचर को वह मालूम कैसे हो गई ?

आर्य, यह चिन्ता की बात नहीं है। हम लोगों ने पहले ही सोचा था कि अपको जब यह समाचार मालूम होगा, तब आप ऐसे उत्साही व्यक्ति अवश्य स्वयं पता लगाने का प्रयत्न करेंगे अतः इसी निर्णय को दृष्टि पथ में रखकर मैंने उसे निर्देश दिया था कि आपके पीछे आने का प्रयत्न करना। फलतः यह रहस्य भेद चिन्ता जनक नहीं है।

कुछ रुककर पुनः चन्द्रगुप्त ने पूछा, अच्छा, राजकुमारी जी आपके बलिदान वाले कथन का क्या अर्थ है ?

ध्रुवस्वामिनी ने चन्द्रगुप्त पर सस्नेह दृष्टि डाल कर कहा, अभी इसको न जानना ही अच्छा होगा।

यह क्यों ?

सुनकर शायद आपको अच्छा न लगे।

चन्द्रगुप्त की उत्सुकता बढ़ गई। बोला, अप्रियसत्य सुनकर भी मुझे कष्ट नहीं होता है। कहिए।

ध्रुवस्वामिनी बोली, आर्य, स्पष्ट कहना तो नहीं चाहती थी, किंतु आपका आदेश टालना भी कठिन है। अतः अप्रिय होने पर भी मुझे क्षमा करेंगे। आपके अग्रज आर्य रामगुप्त से मगध साम्राज्य की रक्षा नही हो सकेगी तथा शकों के द्वारा पददलित होने से भारत बचाया नहीं जा सकेगा। क्षमा करें, यह मेरा ही विचार नहीं है। और भी कई कुशल नीतिज्ञ लोग ऐसा ही कहते हैं। अतः मेरे कथन का तात्पर्य था कि आपको अपने भ्रातृप्रेम का बलिदान करना पड़ेगा।

कुछ खिन्न स्वर में चन्द्रगुप्त ने कहा, यद्यपि आपका कथन सर्वथा तथ्यहीन नही है तथापि मैं समझता हूँ कि भ्रातृप्रेम के बलिदान की

अवश्यकता नहीं होगी । मैंने भी इस विषय पर विचार विचार किया है और, अन्त में एक निर्णय पर भी पहुंच गया हूं ।

ध्रुवस्वामिनी ने पूछा, वह निर्णय क्या है ? मैं अपने सुख की चिन्ता किये बिना पूज्य अग्रज को हर प्रकार का सहयोग देता रहूंगा । और मगध साम्राज्य की सुरक्षा के लिए एक सजग प्रहरी की तरह निरन्तर सचेष्ट रहूंगा ।

ध्रुवस्वामिनी चिन्तित स्वर में बोली, आर्य, यह निर्णय सिद्धांत रूप में तो उत्तम है, किन्तु व्यवहार में सफल नही होगा । क्योंकि, राजनीति ईर्ष्या और शंका नामक अपनी पुत्रियों के साथ आपके इस निर्णय की सफलता में बाधा उपस्थित करेगी ।

चन्द्रगुप्त ने मुस्कराकर धीरे से कहा, आपका यह सोचना असंगत नहीं हैं । किन्तु अभी हीं संभावित बाधा के भय से अपने निर्णीत मार्ग से ऐसा पृथक हो जाना भीं उचित प्रतीत नहीं होता है । यथावसर पुनर्विचार होगा ।

कुछ रुककर पुन: चन्द्रगुप्त नें कहा, जो हो किन्तु आपके हृदय में मगध साम्राज्य के लिये जो स्नेह परिलक्षित होता है, उसके लिए चिरकृतज्ञ रहूंगा ।

नहीं आर्य यह कृतज्ञता उचित नहीं है

क्यों ?

मैं मगध को अपना हीं मानती हूं यह तो हम मगध वासियों का परम सौभाग्य है कि आप ऐसी लक्ष्मीं की कृपा दृष्टि मगध पर हैं और अब मुझे यह भी विश्वास होता है कि निश्चित रूप से मगध का अभ्युदय होगा ।

उज्ज्वल दृष्टि की स्निग्ध दुग्ध धारा से चंद्रगुप्त को सिञ्चित करतीं हुई ध्रुवस्वामिनी बोली, मुझ जैसी तुच्छ नारी को आपसे से

जो सम्मान मिल रहा है, यह आपकी महाशयता को सिद्ध कर रहा है। फिर भी मैं प्रार्थना करूंगी कि आर्य की कृपा दृष्टि इस तुच्छ अबला पर निरन्तर बनी रहे।

चन्द्रगुप्त ने कहा, राजकुमारी जी बार बार अपने को तुच्छ कहना आप के लिए उचित नहीं है। क्योंकि आपका यह अलौकिक सौन्दर्य विश्व की सर्व श्रेष्ठ विभूति है।

चन्द्रगुप्त के मुख से अपनी प्रशंसा सुन कर ध्रुवस्वामिनी का हृदय प्रफुल्ल हो उठा। क्योंकि बहुत दिन पहले से ही चन्द्रगुप्त के गुणों को सुनकर वह उसकी ओर आकृष्ट हो चुकी थी। रुद्रसिंह के विवाह की अस्वीकृति के मूल में भी यही मुख्य कारण था। और चंद्रगुप्त को यहां बुलाने की योजना भी इसी से संबद्ध थी। सो इस समय पहले पहल चंद्रगुप्त के मुख से इस प्रकार की प्रीति युक्त प्रशंसा सुन कर ध्रुवस्वा-मिनी क्षण भर के लिए आत्मविस्मृत हो उठी।

किन्तु कुछ क्षण बाद ही, उसे सहसा स्मरण हुआ कि चंद्रगुप्त ने अभी यूषपान नहीं किया, अत: अधीर अनुनय से बोली, आर्य, मुझ दुष्टा ने वार्तालाप के सुख के लिए आपके यूषपान में विलम्ब करा दिया। क्षमा हो इसे ग्रहण करें।

मुस्कराकर चन्द्रगुप्त ने कहा, राजकुमारी जी, अपकी स्वरसुधा का कर्णञ्जलि से पान कर मुझे जो आनन्द प्राप्त हुआ है, उसके सामने संसार का और कोई भी सुख काम्य नही है ध्रुवस्वामिनी ने मुद्गयूष में से भरे स्वर्णपात्र को हाथ में लेकर कहा, अब इसके ग्रहण में बिलम्ब न करें।

पर्यंक पर सीधे बैठकर चंद्रगुप्त ने ध्रुवस्वामिनी के हाथ से पात्र ले लिया। पात्रग्रहण करते समय ध्रुवस्वामिनी की अंगुलि चन्द्रगुप्त

की अंगुलि से तनिक सी छू गई। इस नन्हें से स्पर्श से दोनों क शरीर से विजली की लहर सी दौड़ गई।

ध्रुवस्वामिनी के कपोल रक्ताभ हो उठे। ललाट पर पसीने की बूंदें मोती की भांति झलक पड़ीं। उसने अपना मुख दूसरी ओर कर लिया।

चन्द्रगुप्त के हृदय में भी गुदगुदी होने लगी। आंखें ध्रुवस्वामिनी के शरीर पर चिपक सी गईं सो वह हाथ में यूषपात्र लिए विभोर सा बैठा रहा। कुछ क्षण बाद, धीरे धीरे यूष पान करने लगा।

ध्रुवस्वामिनी ने यद्यपि अपना मुख घुमालिया था फिर भी उसकी आखों में यौदनोद्दीप्त बलिष्ठ चन्द्रगुप्त तैर रहा था। और वह बलवर्ती स्पृहा के साथ उसे देख रही थी।

यूषपान समाप्त कर चंद्रगुप्त ने यूषपात्र को काष्टपट्टिका पर रख दिया, यूषपात्र के रखे जाने से जो स्वर हुआ, उससे चौककर ध्रुवस्वामिनी घूम पड़ी। और झट से शुद्धजल लेकर सामने खड़ी हो गई एवं उसने अपनी आँखें मूंद ली। उसके हृदय में तीव्र इच्छा हुई कि चन्द्रगुप्त पुनः उसकी अंगुलियों का स्पर्श करे। और इधर चन्द्रगुप्त के हृदय में भी प्रवल इच्छा हुई कि वह ध्रुवस्वामिनी के कोमल कमल कर को अपनी मुट्ठियों में ले ले।

किन्तु उसकी आभिजात्य शालीनता ने उसे रोक दिया। सो विवश होकर अंगुलियों को वचाते हुए उसने जलपात्र ले लिया। और उससे हस्त-मुखादि प्रक्षालन करने लगा।

अंगुलिस्पर्श की इच्छा पूरी न होने से ध्रुवस्वामिनी का मन आकुल हो उठा, किन्तु उसने तत्काल अपने को संयत कर लिया। और सेविका को पात्र ले जाने का आदेश देकर धीरे से बोली, आर्य, और किसी वस्तु की आवश्यकता है। महोपधान (मंसनंद) के सहारे पुनः

लेट कर चंद्रगुप्त ने हंसकर कहा, मनकी उर्वरा भूमि में प्रकृति ने प्रारंभ में ही आवश्कताओं के अन्नत बीज बो दिया है जिससे अपने अपने उत्पति काल में वे अंकुरित होते रहते हैं। किन्तु उनमें से अधिकाश स्वत: विनष्ट भी हो जाते हैं। अत: राजकुमारी जी, उनके संबंध में कुछ कहना ठीक नहीं जंचता है।

मुस्कराकर ध्रुवस्वामिनी ने कहा, फिर भी बहुत से इच्छाबीज फूलते फलते भी है। कहिए कहने में क्या हानि है ?

कुछ रुककर ध्रुवस्वामिनी को साभिलाष दृष्टि से देखते हुए धीरे से चन्द्रगुप्त ने कहा, प्रयत्न करने पर भी समय से पहले फल नहीं मिलता है। इसलिए अभी क्षमा करें।

ध्रुवस्वामिनी प्रेम के संबन्ध में चन्द्रगुप्त के मुख से कुछ स्पष्ट सुनना चाहती थी। किन्तु शील सम्पन्न चन्द्रगुप्त से वह कहलवा न सकी। फिर भी चन्द्रगुप्त का हृदय उसकी ओर आकृष्ट हो गया है। यह बात उससे छिपी न रही। क्योंकि प्रेम दृष्टि को समझने में स्त्रिय की स्वाभाविक बुद्धि बड़ी विलक्षण होती है। अत: वह अपने चिर संक्षिप्त प्रेम के उद्गार को प्रकट करने के लिए आतुर हो उठी, बोली आर्य, आपसे अपने एक संदेह का निराकरण करना चाहती हूं।

कहिए।

कृष्ण चन्द्र के पास रुक्मिणी का संवाद भेजना क्या अनुचित था ? चन्द्रगुप्त जोर से हंस पड़ा। तनिक रुक कर पूछा, राजकुमारी जी, क्या आपने भी किसी कृष्णको निमंत्रित किया है ?

चंद्रगुप्त पर स्निगध कटाक्षपात कर ध्रुवस्वामिनी बोली, अपने मूल प्रश्न का उत्तर पाने पर ही इसका उत्तर दे सकती हू।

अच्छा तो सुनिए। मेरे विचार में रुक्मिणी का का कार्य सर्वथा उचित था। क्योंकि हमारे समाज में स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी।

जिससे कोई भी कन्या अपने बर वरण में स्वातन्त्र थी । अत- यदि रुक्मिणी कृष्ण को वरण करना चाहती थी, तो उसके लिए उन्हें निमंत्रित करना अनुचित नहीं था ।

ध्रुवस्वामिनी ने पूछा, किन्तु हमारे समाज में यह भी तो माना जाता रहा है कि कन्या स्वतन्त्र नहीं होती है । विवाह से पूर्व उस पर पिता आदि गुरुजनों का अधिकार होता है । अत: इसी अधिकार से वे कन्यादान करते है । और कन्यादान ग्रहण करने के बाद ही कोई उसका पति हो सकता है । उसके पहले किसी को पतिमान लेना कैसे उचित माना जायगा ?

मुस्कराकर चन्द्रगुप्त ने कहा, यद्यपि यह विरोधाभास प्रतीत होता है, किन्तु तथ्य सर्वथा स्पष्ट है । स्वयंवर की पद्धति के द्वारा कन्या की आत्मा की स्वतंत्रता को मान्यता दी गई है, साथ ही शरीर पर प्रतिबन्ध भी रखा गया है । अर्थात कन्यादान के पूर्व पति सहवास नहीं हो सकता है । फलत: रुक्मिणी का वरण उचित था । तनिक रुककर पुन: चन्द्रगुप्त ने कहा, राजकुमारी जी, छोड़िये धर्मशास्त्र विवेचन को। अपनी ओर से मैं आपको आश्वासन देता हूं कि आपने यदि किसी कृष्ण को आमन्त्रित किया होगा तो मैं उसका समर्थन करूंगा ।

धीरे से ध्रुवस्वामिनी बोली, मुझे विश्वास था कि आपका आशीर्वाद मिलेगा । मैं कृतज्ञ रहूंगी ।

सप्रेम दृष्टि से ध्रुवस्वामिनी को देखकर चन्द्रगुप्त ने पूछा अच्छा अब कहिए कि क्या आपके शुभ संकल्प में इसी दुर्जन ने बाधा दी है ?

ध्रुवस्वामिनी काँप उठी, क्योंकि सहसा उसके मन में यह बात कौंध गई कि चन्द्रगुप्त समझते हैं, उसने रुद्रसिंह को आमंत्रित किया था । और उसकी इच्छा से अपहरण हो रहा था । अत: भरे गले से

बोली, ऐसी आशंका कर मेरे ऊपर अन्याय न करें, फिर तनिक रुककर बोली, आर्य शकों के प्रति मेरे भीतर जन्मजात घृणा है इसका प्रमाण है कि इधर आपका ध्यान आकृष्ट करने के लिए मैंने ही प्रयत्न किया है।

चन्द्रगुप्त ने पूछा, तब श्री कृष्ण की भूमिका मे दूसरा कौन भाग्यशाली है ?

क्या यह मेरे मुख से ही सुनना आवश्यक है ?

इसमें कोई हानि भी तो नहीं है।

कुछ रुककर धीरे से ध्रुवस्वामिनी बोली, मैं मानती हूं कि इसका उत्तर आपको मिल चुका है।

चन्द्रगुप्त कुछ देर तक चुप हो गया। फिर गंभीर स्वर से बोला, मैं अपनी ओर से एक बात कहना चाहता हूं आपको विदित होगा कि मेरा विवाह हो चुका है। ऐसी स्थिति में मुझसे विवाह कर कोई राज्य कन्या अपने प्रधान पद का त्याग करना कैसे चाहेगी। दृढ़कंठ से ध्रुवस्वामिनी बोली, आर्य, प्रेम की आत्मा त्याग है। त्याग के बिना प्रेम शव तुल्य होता है अत: सच्ची प्रेमिका के लिए प्रिय के अंतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु काम्य नहीं होती है।

इसी समय वहाँ अयोध्या नरेश आ गए। उठने का प्रयास करते हुए चन्द्रगुप्त को रोककर उन्होंनें कहा, आप कष्ट न करें। कहिए, स्वास्थ्य कैसा है ?

आपकी कृपा से अब पूर्ण स्वस्थ हूं।

अयोध्या नरेश बैठ गए ' ध्रुवस्वामिनी पर स्निग्ध दृष्टडाल कर उन्होंने पूछा, राजकुमारी आपकी सेवा में कोई त्रुटि तो नहीं करती हैं?

चन्द्रगुप्त ने विनम्र स्वर से कहा, आर्य वस्तुत: औषधि से अधिक इनकी सेवा से ही मैं स्वस्थ हुआ हूं। अत: मैं आजन्म इनका ऋणी रहूंगा। प्रसन्न स्वर से अयोध्या नरेश ने कहा महाराजकुमार ऋणी

आप नहीं, हम लोग हैं। आपने हमारे वंश की मर्यादा की रक्षा की है। फिर तनिक रुककर बोले, मैं आपसे एक निवेदन भी करना चाहता हूं।

क्या आज्ञा हूं ?

मुझे अभी भी रुद्रसिंह का भय है। अत: मैं ध्रुवस्वामिनी की चिंता से मुक्त होना चाहता हूं।

बिना कुछ कहे चन्द्रगुप्त ने उत्सुक दृष्टि से देखा। अयोध्या नरेश ने कहा मैं ध्रुवस्वामिनी को आपकी सेवा में देना चाहता हूं।

चंद्रगुप्त का हृदय आनन्द से उच्छलित हो उठा। फिर भी अपने आन्तरिक आवेग को कष्ट से नियंत्रित कर उसने कहा, आर्य मैं साम्राट के सेवक के रूप में जनपदों कां निरीक्षण करने चला था। अत: इस क्रम में जो कुछ भी प्राप्त होगा, उस पर सम्राट का अधिकार होगा। स्वयं अपनें लिए किसी वस्तु को ग्रहणकरने में मैं असमर्थ हूं।

इस कर्तव्य निष्ठा के लिए आप प्रशंसा के योग्य हैं। किन्तु मैं जानता हूं सम्राट के अधिकार की बात औपचारिक मात्र हैं। सम्राट आपको ही सौंप देंगे। मैं भी उनसे अनुरोध करूंगा। अत: इसकी चिन्ता नहीं। मैं आपकी स्वीकृति चाहता हूं चन्द्रगुप्त ने गदगद कंठ से कहा, मेरी स्वीकृति की क्या बात है। मैं अपने को धन्य मानता हूं किन्तु फिर भी कहता हूं, सब कुछ सम्राट पर हीं निर्भर है।

अयोध्या नरेश नें कहा, वत्स, मेरी चिन्ता दूर हुई। बहुत प्रसन्न हूं अच्छा अब आप विश्राम करें। और वे चले गये।

उनके जाने पर चन्द्रगुप्त ने कहा, अब तो कृष्ण पर रुक्मिणी प्रसन्न है ?

ध्रुवस्वामिनी की आँखों से आंसू छलक पड़े थे। कंठ भर आया था। अंचल से आँसू पोंछकर खड़ी हुई। और, झट से चन्द्रगुप्त की चरणधूलि लेकर प्रकोष्ठ से भाग गई।

चंद्रगुप्त ने आनन्दातिरेक से आंखें मूंद ली।

—o—

: ५ :

वीरभद्र एक भूमिगृह में रखा गया था। वहां अन्धकार का चिर निवास था। सो, कब दिन हुआ, कब रात हुई, यह ज्ञान वहां असम्भव था। वायु प्रवेश के लिए एक छोटा छिद्र था, जो मकड़ी के जाल से आवृत मुख होने के कारण प्रकाश रोकने के लिए पर्दे का काम करता था।

आज तीन दिनों से वीरभद्र उपवास कर रहा था, किन्तु उसे प्रतीत हो रहा था कि सत्ययुग, त्रेता और द्वापर मे तीन युग निराहार रहते बीत गए है। भूख से अंतड़ियाँ ऐठती जा रहीं थीं। एक घूंट पानी के लिए कंठ तरस रहा था।

उसे बार बार पश्चाताप हो रहा था कि उसे धर्ममित्रा पर अन्ध विश्वास नहीं करना चाहता था, किन्तु इससे भी अधिक उसे अपने असमर्थ क्रोध से पीड़ा मिल रही थी। वह दांत पीसकर मुट्ठियो को बांध कर दुहरा रहा था कि यदि भाग्य से इस बन्धन से छुटकारा मिला तो सबसे पहले उस राक्षसी धर्ममित्रा की हत्या करूंगा।

वस्तुतः वीरभद्र के मन में अनजाने धर्ममित्रा के प्रति मधुर भाव उत्पन्न हो गया था, जिससे वह अपने गुप्तचर कर्म में प्रमाद कर बैठा था। यह चिर सत्य है कि नारी के प्रति नर के मन में मधुर भाव का उत्पन्न होना, उसे अन्धा कर देता है।

इस प्रकार वीरभद्र भयानक कष्ट में पड़ा था। घोर निराशा का पारावार उत्ताल तरंगों के साथ गरज रहा था, जिसमें वह असहायावस्था में बह रहा था। शून्यता की चरम सीमा पर चेतना मूढ़ सी बैठी थी।

इसी समय अचानक द्वार के कपाट खुले। और दो शक सैनिक प्रकाश के साथ नंगी तलवार लिए हुए कोठरी में पैठे।

वीरभद्र की चेतना सजग हो गई। पहले तो उसकी आँखें चौंधियाँ उठी, किन्तु बाद में उन्हें देखकर आशा निराशा के झूले पर झूलने लगा।

एक शक सैनिक कड़क कर बोला, वीरभद्र सम्राट ने तुम्हें छोड़ देने का आदेश दिया हैं। चलो। क्षण भर के लिए वीरभद्र का मन अप्रत्याशित प्रसन्नता से भर उठा। आंखों से आँसू छलक पड़े किन्तु तत्काल चिरसेवित सतर्कता ने सावधान कर दिया। उसने कहा, सम्राट की इस कृपा के लिए मैं कृतज्ञ रहूंगा। मेरा बन्धन खोल दें।

पैर का बन्धन खोलकर सैनिक ने कहा, बाहर चलो।

हाथ का बन्धन भी खोल दीजिए।

यहां नहीं, बाहर चलो।

शंकित मन से वीरभद्र चला।

बाहर आने पर शुद्ध हवा और प्रकाश को पाकर वीरभद्र में नया जीवन आ गया। उसकी बुद्धि सावधान हो गयी।

सैनिक ने वीरभद्र को आसन पर बैठने के लिए कह कर पूछा, तुम्हे प्यास लगी है? आसन पर बैठकर वीरभद्र बोला, पानीं के बिना मर रहा हूं।

सैनिक ने अपने साथी को इशारा किया, उसने स्वच्छ रजत पात्र में जल लाकर सामने रख दिया। और साथ ही, एक थाली में उत्तम भोज्य पदार्थों को भी रख दिया।

जल और भोजन को सामने देख कर वीरभद्र की बुद्धि भ्रांत हो गई। हाथ के बंधे रहने पर भी उसने भोजन की ओर तेजी से मुंह बढ़ाया।

किंतु उस क्रूर सैनिक ने जल और भोजन को सामने से खींच लिया। और दूसरे ने पुन: उसके पैर में रस्सी बांधकर उसे खम्भे से बांध दिया।

वीरभद्र ने आहत स्वर से पूछा, मित्र अब यह क्यों करते हो ?

एक सैनिक हंसकर बोला, जो अभी उचित है। इतना अधीर क्यों होते हो ? तुमसे कुछ पूंछना है। उत्तर पाने पर तुम्हें सब कुछ मिलेगा, प्राण अन्न जल और भी तुम जो चाहोगे।

वीरभद्र समझ गया कि उसे धोखा दिया जा रहा है। उसनें क्रोध से होंठ काट लिये। पूछा, तुम्हारे सम्राट ने राजकुमारी का अपहरण कर लिया है ?

नहीं। तुम्हारे सकेत से ही बाधा उपस्थित करने में चंद्रगुप्त सफल हो गया है। किंतु उसने सोयेसिह को छोड़ दिया है। उसे निश्चित रूप से इसका फल भोगना होगा।

इस दुर्दशा में भी बीरभद्र को हंसी आ गई। बोला, तुम्हें मांलूम है कि इस देश का नाम भारत है ? जान लो, बीर भरत के नाम पर ही यह नाम पड़ा है। यहां के बच्चे सिंह को पटक कर उसके दांत गिना करते हैं, उसके बच्चे से कुत्ते के पिल्ले की तरह खेलते है। और सुन लो इधर उधर करने पर दांत उखाड़े जा सकते है। जीभ खीच ली जा सकती है।

सैनिक डांटकर बोला, चुप रहो। छोटे मुंह बड़ी बात मत बोलो अपने सिर पर नाचती मौतको देखो। सीधे से जो पूछता हूं। उसका उत्तर दो।

?

मगध की सेना में गज सेना कितनी है ?

तुम्हारे सिर में जितने बाल हैं।

सैनिक कड़क कर बोला, मूर्ख, अधिक समय नहीं है। यदि जीने का जी करे तो ठीक ठीक उत्तर दो ?

जिन्दगी बच जायेगी। मौज करोगे। बोलो गज सेना कितनी है ?

हाथ खोल दो तो बतला दूंगा।

पुन: सैनिक ने पूछा, अच्छा गज सेना की बात जाने दो । कहो मगध के राजमहल में प्रवेश करने का गुप्तद्वार कहां है।

वीरभद्र ने कहा, तुम बहुत बड़े मूर्ख हो।

क्यों ?

तुम इतना भी नहीं समझते हो कि इसके उत्तर के लिए तुम्हें मेरा विश्वास प्राप्त करना पड़ेगा। पहले बन्धन खोल दो, बाद में सब बता दूंगा। क्रूर हंसहिंस कर सैनिक बोला, मुझसे चालाकी नही चलेगी। मैं सब समझता हूं इसका उत्तर तुमसे नही तुम्हारे बाप से लूंगा। और उसने वीरभद्र के मुंह पर जोर का चाँटा जड़ दिया।

दूसरा सैनिक वीरभद्र से नम्रता पूर्वक बोला, मित्र बेकार की बात में समय नष्ट न करो। तुम अभी व्याकुल हो। पानी पी लो। शांत होकर सोचो। उत्तर देने में ही तुम्हारा कुशल है।

और उसने जलपात्र को वीरभद्र के मुख के समीप कर दिया।

इतने निकट से जल को देखकर वीरभद्र को प्यास सौगुनी बढ़ गई। उसने लपक कर मुंह से पात्र को पकड़ लिया।

किन्तु वह केवल एक घूट ही पानी पी सका। क्रूर सैनिक ने पात्र को मुख से खींच लिया। और दिखलाते हुए बोला, उतर दे दो तब आराम से पीना ।

वीरभद्र क्रोध से कांप उठा। तड़पकर बोला मैं तुम्हारे पानी पर थूकता हूं। मुझसे उत्तर नहीं पा सकोगे।

मुस्कराकर दूसरे सैनिक ने कहा मित्र, क्रोध, करने से कोई लाभ नहीं होगा। सोचो, उत्तर नहीं देने से निश्चित रूप से तुम्हें प्राण दंड मिलेगा। फिर तुम्हारे परिवार की क्या स्थिति होगी ? तुम्हारे बच्चों का लालन पालन कौन करेगा ?

वीरभद्र बोला मेरा परिवार नहीं है।

कोई बात नहीं। अभी बिगड़ा नहीं है। तुम युवक हो। घर बसा सकते हो। मैं सम्राट से तुम्हारे लिए सिफारिश करूंगा। तुम्हें ऊंचा पद मिलेगा। सुन्दर स्त्री मिलेगी। इच्छित धन मिलेगा। इस प्रकार अभी भी संसार का सुख पा सकते हो। हठ मत करो। उचित उत्तर दे दो।

वीरभद्र गंभीर स्वर से बोला, इस परामर्श के लिए धन्यवाद। किन्तु कान खोलकर सुन लो मुझे कोई प्रलोभन डिगा नहीं सकता। मेरे लिए सबसे बड़ा सुख सेवा है। मैं देश के लिए सब कुछ त्याग सकता हूं, किन्तु विश्वास घात नहीं कर सकता।

पहला सैनिक अपने साथी से गरजकर बोला, क्या सिर खपाते हो ? लात का आदमी बात से नहीं मानता।

दूसरे सैनिक ने कठोर कंठ से पूछा, बोलो, क्या कहते हो ?

बीरभद्र कुछ नहीं बोला।

पहले सैनिक ने लपककर कोड़ा उठा लिया, और वीरभद्र की देह पर कोड़ा बरसाने लगा। सन। सन सन सन सन।

वीरभद्र का शरीर कशाघात से क्षत-विक्षत हो गया। कहीं कहीं मांस निकल आया। खून की धारा बह चली। फिर भी वीरभद्र के मुख से आह भी नहीं निकली।

आश्चर्य से हाथ रोककर सैनिक ने पूछा, कहो उत्तर दोगे या घाव पर नमक मिर्च लगाऊं, ? उसे उपेक्षा से देखकर वीरभद्रने दृष्टि घुमा ली।

दूसरे सैनिक ने तलवार खींच ली, बोला अच्छा अब मरने के लिये तैयार हो जाओ।

वीरभद्र ने आंखें मूंद लीं। मन में ईश्वर का स्मरण करने लगा।

सैनिक कुछ पीछे हटा। तलवार तानकर चलाने के लिए उद्यत हुआ कि इसी समय अचानक प्रचण्ड वेग से एक तीर आया, और दूसरे सैनिक के गले में धंस गया।

भयानक चीत्कार की ध्वनि हुई और वह सैनिक वहीं धराशायी हो गया।

पहला सैनिक चौंक कर पीछे की ओर घूमा कि तब तक काल-दंड की तरह सनसनाता हुआ तीर आया, और उसके मस्तिष्क को फोड़कर भीतर घुस गया। उसके मुख से आह भी नहीं निकल सकी, वह भी वहीं गिर पड़ा शांत हो गया।

वीरभद्र ने आंखें खोल दी थीं। उसे इस घटना परिवर्तन पर आश्चर्य हो रहा था वह जीवन रक्षक को देखने के लिए उत्सुक प्रतीक्ष करने लगा।

कुछ क्षण बाद हाथ में धनुष लिये हुए संघमित्रा कोठरी में पैठी। और धनुष फ़ेंककर, दौड़कर वीरभद्र के पैरों पर गिर पड़ी। फफक कर रोने लगी।

धर्ममित्रा को देखकह वीरभद्र पहले तो क्रोध और घृणा से भर उठा। अपने पूर्व सकल्पित प्रतिशोध के लिए आतुर हो उठा। किन्तु क्षण भर में यह सोचकर कि इसी ने मेरी प्राण रक्षा की है, वह चिन्ता मे पड़ गया। इस रहस्य मयीं नारी का रहस्य बड़ा उलझा हुआ मालूम पड़ा।

धर्ममित्रा उठकर खड़ी हो गई। आंसू पोंछ कर भरे गले से बोली आपके इस कष्ट का कारण मैं अभागिन हूं। मुझे दंड दें।

वीरभद्र ने शुष्क कंठ से पूछा, इन दोनों को तुमने ठीक ही मारा है ?

हां थोड़ी देर पहले मुझे मालूम हुआ है कि ये लोग आपकी हत्या करने गये हैं। दौड़ीं आई हूं। संयोग से आपके प्राण बच सकें हैं।

तुमने ही तो बंधवाया था, फिर बचाने क्यों आई हो ?

मैं भ्रम में पड़ गई थी।

कैसा भ्रम ?

कहने में कुछ समय लगेगा। किन्तु अब यहां अधिक रुकना खतरे से खाली नहीं है। सँभव है और कोई आ जाय। अतः यहाँ से जल्द चल देना चाहिए।

और, उसने तलवार से वीरभद्र के बन्धन को काट दिया।

बन्धन कटते ही बीरभद्र लड़खड़ा कर गिर पड़ा धर्ममित्रा ने उसे सहारा देकर उठाया। और किसी तरह बाहर लाई। किन्तु बाहर आते ही वीरभद्र वेहोश हो गया।

धर्ममित्रा घबड़ा गयी। परन्तु क्षणभर में ही उसने अपने को सँयत कर लिया। कर्तव्य निश्चित कर लिया।

वीरभद्र को सुलाकर बाहर गई।

और कुछ देर में ही भाड़े की गाड़ी पर वीरभद्र को सुलाकर गुप्त स्थान की ओर चल पड़ी।

—०—

: ६ :

स्वस्थ हो जाने के बाद चंद्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी के साथ पाटलिपुत्र के लिए चल पड़ा था। वह चार दिनों की यात्रा के बाद सन्ध्या समय मल्लिका ग्राम में पहुँचा। यह एक उपनगर था जो पाटलिपुत्र से पाँच कोस पश्चिम था। यह बड़ा ही सुन्दर और रमणीय था।

यहाँ मगध साम्राज्य का विषयपति रहता था। विषयपति ने चन्द्रगुप्त की अभ्यर्थना की और उन्हें उद्यानस्थ अतिथिशाला में ले जाकर ठहराया।

विषयपति के चले जाने पर चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी के समीप गया ध्रुवस्वामिनी गवाक्ष से उपनगर की शोभा देख रही थी। चन्द्रगुप्त को देखकर प्रसन्न स्वर से बोली, आर्य आपकी तरह ही आपका देश भी बहुत सुन्दर है।

ध्रुवस्वामिनी से कुछ दूर पर बैठ कर चन्द्रगुप्त ने हंस कर पूछा, तो सचमुच आपको यह देश अच्छा लग रहा है ?

जी हाँ। इतना सोच भी नहीं सकी थी। मैं समझती हूँ कि स्वर्ग भी इससे अच्छा नहीं होगा।

अपनी जन्मभूमि की प्रशंसा से पुलकित होकर चन्द्रगुप्त ने कहा, राजकुमारीजी आपकी गुणग्राहकता की मैं प्रशंसा करता हूँ। और आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मगध आपको सदा प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता रहेगा।

धीरे से मुस्कराकर ध्रुवस्वामिनी बोली, सम्पूर्ण मगध की अपेक्षा मैं केवल एक मागधी के प्रेम को अधिक महत्व देती हूँ ।

अपने प्रति इंगित समझकर चन्द्रगुप्त ने कहा वह एक तो आपका सेवक हो चुका है । उससे आपकी सेवा में त्रुटि नहीं होगी आप चाहे जिस स्थिति में रहें वह सदा आपका सेवक रहेगा ।

चौंक कर ध्रुवस्वामिनी ने पूछा, स्थिति का तात्पर्य क्या है ? कुछ रुक कर धीरे से चन्द्रगुप्त ने कहा आपको विदित है कि आप सम्राट की सेवा में जा रही हैं इसलिए अभी कैसे कहा जा सकता है कि सम्राट इस उपहार से किसको पुरस्कृत करेंगे ?

इस प्रकार मेरे द्वारा प्रयुक्त स्थिति शब्द का तात्पर्य समझने में आपको कठिनाई नहीं होनी चाहिए ।

ध्रुवस्वामिनी कांप गई । आंखों में आंसू आ गये भरे गले से बोली, ऐसा मत कहिए । पिताजी ने सम्राट् की सेवा में प्रार्थना पत्र दिया है कि यह सेविका कि महाराज कुमार चन्द्रगुप्त को ही सौंपी जाय । मैं भी लज्जा खोल कर निवेदन करूंगी । अत: वे अन्यथा नहीं करेंगे । सुना है सम्राट बहुत ही विवेकी हैं जो मुझे विश्वास है कि वे इस चेतन उपहार का प्रयोग जड़ की तरह नहीं करेंगे ।

चंद्रगुप्त हंस पड़ा बोला, चिंता न करें । मैंने यह बात यों ही कह दी है । पिता जी बहुत ही सरल और उदार है । उनका मुझ पर विशेष अनुराग भी है । अत: वे विपरीत कुछ भी नहीं करेंगे ।

पुन: कुछ स्मरण करते हुए चंद्रगुप्त ने कहा, मेरी यात्रा के समय पिताजी कुछ रुग्ण थे, मैं जब तैयार होकर प्रणाम करने गया तो उनकी आंखों में आंसू आ गए । भरे गले से बोले, तुम्हें जाने देनें की इच्छा नहीं हो रही है किंतु कर्तव्य विवश बना रहा है । जल्द लौटना ।

उत्सुक स्वर से ध्रुवस्वामिनी ने कहा, न जाने क्यों आज उनको देखने की मुझे भी इच्छा हो रही है। हम लोग कल कब तक पहुँचेंगे ?

अचानक चंद्रगुप्त का शरीर कांप गया। मुख विवरण हो गया।

ध्रुवस्वामिनी ने घबड़ाकर पूछा, क्या बात है ?

चंद्रगुप्त ने भरे गले से कहा, कल रात मैंने बहुत बुरा स्वप्न देखा था। अतः पिताजी के स्वस्थ्य के लिए चिंता हो रही है। मैंने आज प्रातःकाल ही उनके स्वास्थ्य का समाचार लाने के लिए कुंवर को भेज दिया है पता नहीं वह अब तक लौटा क्यों नहीं ?

इसी समय प्रतिहारी ने आकर सूचना दी कि पाटलिपुत्र से उपरिक महाराज भास्कर गुप्त आये हैं। वे इसी समय महाराज कुमार का दर्शन करना चाहते हैं।

चंद्रगुप्त घबड़ा गया, क्यों, भास्करगुप्त उच्चपदासीन राजकीय पुरुष होने के अतिरिक्त सम्राट के अन्तरंग मित्र भी थे। उनके समवयस्क थे, और, इधर कुछ वर्षों से वे पाटलिपुत्र से बाहर बहुत कम जाते थे। उनसे मिलने के लिए प्राया सम्राट ही उनके निकट जाते थे। किंतु वही भास्कर गुप्त इतनी दूर आये हैं, यह अत्यंत चिंताजनक है। सो चंद्रगुप्त अतिशीघ्र व्यस्त स्थिति में ध्रुवस्वामिनी से बिदा लेकर चल पड़ा। और अपने आवास के पास पहुंचकर उसने देखा, उपरिक महाराज भास्कर गुप्त के साथ सहायक भट्टाश्वपति विजय वर्मा भी बैठे हैं।

दोनों श्रेष्ठजनों का अभिवादन कर चंद्रगुप्त ने पूछा, आर्य, पिता जी का स्वास्थ्य कैसा है ?

स्निग्ध दृष्टि से चंद्रगुप्त को देखकर भास्कर गुप्त ने कहा, वत्स अब हम बृद्धों के स्वाम्थ्य के सम्बंध में क्या पूछना है ? बुढ़ापा तो खुद बड़ा रोग है। मैं सम्राट का सम्वाद लेकर तुम्हारे समीप आया हूँ।

चिंतित स्वर मे चंद्रगुप्त ने पूछा, क्या पिताजी अधिक अस्वस्थ हैं?

रूखी हंसी हंसकर भास्कर गुप्त ने कहा, अरे वत्स, वृद्धावस्था में अधिक और कम क्या चीज है ? कम अधिक बन जाता है और अधिक कम हो जाता है। खैर, उनके सम्बन्ध में तुम्हें चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। उनका सम्वाद सुनो।

क्या आदेश है ?

कुछ रुककर स्थिर कंठ से भास्कर गुप्त ने कहा, वत्स, सम्राट का विचार है कि वे अपने हाथों से मगध साम्राज्य के सम्राट पद पर तुम्हारा अभिषेक कर दें। तुम इसे स्वीकार कर लो, यही समझाने के लिये यहाँ हमें भेजा है।

चंद्रगुप्त ने चौंककर पूछा, आर्य, पूज्य अग्रजके रहते पिताजी ऐसी अनीति क्यों करना चाहते हैं।

वत्स, तुम्हें विदित है कि तुम्हारे पिताने मगध साम्राज्य को अपने रक्त से सींचकर पुष्पित पल्लवित किया है। उन्होंनों कभी भी अपने दैहिक सुख पर ध्यान नहीं दिया। निरंतर साम्राज्य के अभ्युदय की चिंता में ही अपने को खपाते रहे हैं। वस्तुत: पैनीं तलवार कीं धार पर चलते हुए उनकी खतम हुई है। अत: ऐसी स्थिति में अपने बाद साम्राज्य की सुरक्षा के सम्बंध में उनका चिंतित होना अनिवार्य है। सो, उनका विचार है कि राजकुमार रामगुप्त से इस विशाल मगध साम्राज्य की रक्षा नहीं हो सकती। इसलिए तुम्हारे समर्थ हाथों में साम्राज्य सौंप कर वे निश्चित हो जाना चाहते हैं।

चंद्रगुप्त की आँखो में आँसू आ गये। कुछ रुककर उसने रुद्ध कंठ से कहा, आर्य आपका कथन उचित है। फिर भी, मुझे वह अनीति मालूम पड़ती है। भैया को छोड़कर स्वयं सम्राट पद ले लेना, भार-

तीय संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध मालूम पड़ता है। अतः आर्य, क्षमा करें, धृष्टता पूर्वक कहना पड़ता है कि यह मेरे लिए बहुत कठिन है।

भास्कर गुप्त ने कहा, नीति और अनीति निर्द्धारण बहुत कठिन है। एकांगी दृष्टिकोण से उसका निर्द्धारण उचित नहीं होता है। देश, काल तथा अवस्थादि को सामने रखकर ही विचार करना चाहिए। गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन के सामने इसी विषय को स्पष्ट किया है। और सच पूछो तो मेरे विचार में राज्य की रक्षा इन सबों से परे की बात है। उसके सामने और कुछ नहीं सोचता है। रामगुप्त के हाथ में मगध की प्रतिष्ठा कभी भी सुरक्षित नहीं रहेगी, यह क्यों नहीं सोचते हो ? वत्स, तुम्हारे पिता ने बहुत कुछ सोचने के बाद मुझे तुम्हारे पास भेजा है। तुम्हें अस्वीकार नहीं करना चाहिए।

विजयवर्मा ने कहा, महाराजकुमार, आप सैनिकों के संपर्क में रहे हैं, अतः आपको उनकी भावनाओं का ज्ञान है। समस्त मगध सैन्यदल आपको ही सम्राट के रूप में देखना चाहता है। और मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि आपकी उदभट प्रतिभा की छाया में मगध सैन्यदल निश्चित रूप से विश्व विजय में सफल होगा।

चंद्रगुप्त के मन में दो विरोधी विचारधाराओं का प्रबल संघर्ष शुरू हो गया। एक ओर सम्राट पद का गौरव, उससे उत्पन्न संभावित में महत्वाकांक्षा, वैभव विलासादि उसे प्रचण्ड वेग से अपनी ओर खींचने लगे तो दूसरी ओर भ्रातृ प्रेम तथा संस्कारभूत मर्यादा का बंधन उसे अपनी ओर खींचने लगे, । विमूढ़ जैसा वह कभी इधर तथा कभी उधर लुढ़कने लगा। अतः कुछ उत्तर न दे सका।

कुछ रुककर पुनः भास्कर गुप्त ने कहा, वत्स, तुम अधिक मत सोचो। स्वयं तुम यदि इनके लिए प्रयत्न करते तो अपयश और अनीति की बात आती। यहाँ तो उलटी बात है। तुम कर्तव्य मानकर पितृ आदेश का पालन करोगे।

चंद्रगुप्त ने भरे गले से पूछा, आर्य, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि पूज्य भैया सम्राट रहें और मैं उनका सहायक रहूं ? क्या उस तरह मैं मगध की सेवा नहीं कर सकूंगा ?

भास्कर गुप्त से कहा, तुम सब कर सकते हो । हम लोगों को तुम्हारे सम्बन्ध में किसी भी स्थिति में शंका नहीं है । किन्तु तुम्हारा यह सिद्धांत व्यवहार में सफल नहीं होगा । क्योंकि, उच्चपद प्राय: ईर्ष्यालु होता है । तुम्हारी सफलता और लोकप्रियता देखकर आलसी रामगुप्त तुम्हारा विरोधी बन जायगा । फलत: गृहकलह के कारण मगध का बहुत बड़ा अनिष्ट हो जायेगा । धीरे से चंद्रगुप्त ने पूछा, आर्य, क्या अभी ही इस तरह की आशंका उचित है ?

हाँ राजनीति के संबध में दूरदर्शी होना नितान्त आवश्यक है। प्रत्येक प्रकार की संभावनाओं को दृष्टि पथ में रखना चाहिए ।

क्या भैया से भी इस सम्बन्ध में पूछा गया है ?

नहीं ?

उनसे पूछने में क्या हानि है ?

समय पर सूचित कर दिया जायगा । तुम अपनी स्वीकृति दे दो ।

चंद्रगुप्त कुछ सोचने लगा ।

इसी समय प्रतिहारी ने कुन्तधर के आने की सूचना दी ।

चंद्रगुप्त ने उसे शीघ्र भेजने के लिए कहा । कुन्तधर के आने पर चंद्रगुप्त ने पूछा, कहो पिताजी का स्वास्थ्य कैसा है ? तुम्हें इतना बिलम्ब क्यों हुआ है ?

सबों का अभिवादन कर धीरे से कुन्तधर बोला देव, दिन भर प्रयत्न करने पर भी अन्त:पुर से सम्राट का कोई समाचार नहीं मिल सका । अन्त में मालूम हुआ कि सम्राट अस्वस्थ हैं । वहाँ कोई नहीं जाता है ।

फिर कुछ रुककर बोला, सन्ध्या समय पता चला है कि स्थिति अच्छी नहीं है।

चंद्रगुप्त ने भास्कर गुप्त से पूछा, आर्य आप कब चले हैं।

सन्ध्या से दो घड़ी पहले। महाराज ने तुम्हारे लिये यह आदेश पत्र स्वय लिखा था। और उन्होंने चंद्रगुप्त को आदेश पत्र दे दिया।

चंद्र गुप्त ने देखा, उसमें सम्राट् चंद्रगुप्त को सम्राटपद देने की घोषणा की थी। चंद्रगुप्त ने पूछा, उस समय सम्राट की स्थिति कैसी थी ?

बहुत अच्छी नहीं। उन्होंने घबड़ाकर ही मुझे तुम्हारे पास भेजा था।

चंद्रगुप्त का गला रुंध गया। उठकर बोला, आर्य मैं अभी चलना चाहता हूं। क्या आप विश्राम करेंगे।

नहीं चलो, हम लोग भी चलते हैं।

चंद्रगुप्त ने शीघ्रता से भीतर जाकर ध्रुवस्वामिनी को समझा दिया और उसकी देखरेख के लिए दलपति को विशेष सावधान कर तीव्रगामी रथ से भास्कर गुप्त और विजयवर्मा के साथ पाटलिपुत्र की ओर चल पड़ा।

: ७ :

धर्ममित्रा वीरभद्र को लेकर एक गुप्त स्थान में चली गई थी। वहां पर वीरभद्र पन्द्रह दिनों तक बीमार रहा। कशाघात के व्रणों के साथ उसे ज्वर भी हो गया था।

धर्ममित्रा ने अपूर्व तन्मयता के साथ उसकी सेवा की। वह दिन रात उसी की परिचर्या में लगी रहती थी। उसे अपने खाने पीने की भी सुधि नहीं थी। उसकी इस सेवा से वीरभद्र के मन में उसके प्रति जो कटुता थी, वह समाप्त हो गई। और, उसका अधिकाधिक उसकी ओर आकृष्ट होने लगा।

पूर्ण स्वस्थ हो जाने के बाद एक दिन अपराह्न काल में वीरभद्र गृह के बाहर निम्ववृक्ष के नीचे काष्ठासन पर बैठा था। यह एकांत स्थान था। वह कुछ सोचने में तल्लीन था। इसी समय धर्ममित्रा बाहर से आकर उसके सामने बैठ गई। मुस्कराकर पूछा, क्या सोचते हो।

तुम्हारे संबन्ध में ही सोच रहा था।

कहो, क्या सोच रहे थे ?

तुम कितनी रहस्य मयी हो।

यह तो कोई नई बात नहीं है। इसे तुम कई बार कह चुके हो।

सुलझा नहीं सका हूँ। इसलिए इसे ही सोचता रहता हूं।

हंसकर धर्ममित्रा बोली, तुम्हें मैं रहस्यमयी जान पड़ती हूँ और मुझे तुम रहस्यमय जान पड़ते हो ?

मेरा कौन सा रहस्य तुमसे छिपा है ?

अब तक तुमने अपना विवाह क्यों नहीं किया ?

किया था ?

झूठ बोलते हो। तुमने कहा था, मैं अकेला हूं ।

यह भी सच है ।

क्या मतलब ?

साफ है । मैंने विवाह किया था, किन्तु अब पत्नी नहीं है ।

ओह तो वह मर गई ?

हो सकता है ।

फिर उलटी बात करते हो ।

सुलझा दूंगा । किन्तु तुम कहो तुमने मुझे क्यों बचाया ?

मुझे मगध वासियों से प्रेम है। पहले मैंने समझा था कि तुम सच-मुच वाराणसी के हो । तुम्हें संकेत करते मैं देख चुकी थी। अतः तुम्हें बन्दी बनाना आवश्यक हो गया था । परन्तु बाद में जब पता चला कि तुम मगध के गुप्तचर हो तो मुझे बहुत पश्चाताप हुआ ।

मगधवासियों से अकारण इतना प्रेम क्यों है ?

क्योंकि मेरा जन्म मगध के समीप वैशाली में हुआ था ।

कुछ रुककर वीरभद्र ने कहा, मित्रे आज, तुमसे कुछ बात स्पष्ट कह देना चाहता हूं । आज तक मैंने किसी भी अन्य स्त्री से प्रेम नहं किया है । क्योंकि मेरे हृदय में मेरी अबोध पत्नी का स्थान सुरक्षित था । परन्तु तुममें उसकी प्रतिछाया सी मालूम पड़ी सो मैं तुम्हारी ओर अनायास आकृष्ट हो गया । और अब सोचता हूं कि तुम मेरे लिए अनिवार्य हो गई हो । इसलिए पूछना चाहता हूं कि क्या तुम मुझे ग्रहण कर सकोगी ?

धर्ममित्रा के हृदय में भी अपने अबोध पति के लिए अपूर्व ललक थीं, जो इसे किसी भी स्थिति में शांत नहीं रहने देती थी। बाल्य काल का संस्कारी मन सदा अतृप्त का अनुभव करता रहता था।

परन्तु वीरभद्र में उसे भी अपने पति की झलक सी मिली थी। अतः वह प्रथमदर्शन में ही उसकी ओर झुक गई थी। बीच में बाधा आई किन्तु बाद में यहाँ आने पर धीरे-धीरे वह उससे हृदय से प्रेम करने लगी थी।

और इधर उसके मन में एक ही लालसा थी कि वह वीरभद्र के साथ घर बसा ले। कई बार उसके मन में इस इच्छा को प्रकट कर देने की बलवती आतुरता उत्पन्न हुई, परन्तु नारीं सुलभ लज्जा के कारण वह कह नहीं सकी थी।

आज जबकि स्वयं वीरभद्र ने प्रस्ताव किया तो उसकी आंखों में आँसू आ गए। रोमांच हो आया। अतः कुछ देर तक वह बोल न सकी।

उसकी इस स्थिति को देखकर वीरभद्र ने संकुचित कंठ से कहा क्या मैंने अनुचित प्रस्ताव कर दिया है। यदि ऐसी बात है तो क्षमा करें।

शीघ्रता से धर्ममित्रा बोली, आप क्षमा न मांगे। यह आवश्यक है। किन्तु मेरे पूर्वजन्म को जाने बिना क्या आप मुझे ग्रहण कर लेंगे ?

हां।

यदि मैं पतिता होऊं, तब भी ?

तब भी। क्योंकि, मुझे तुम्हारे शील रूप ने ही अभिभूत किया है। इस से मतलब है। भूत से नहीं।

पहले पहल वीरभद्र के मुख से तुम सुनकर धर्ममित्रा का रोंमरोम आल्हाद से भर उठा। कुछ रुककर उसने पूछा, अच्छा आप अपनी पत्नी के सम्बन्ध में बताइए। क्या समगुच वे मर गई हैं?

शांतकंठ से वीरभद्र बोला, बैशाली के समीपस्थ तथागत ग्राम में बारह वर्ष की उम्र में मेरा विवाह हुआ था, पत्नी की उम्र नव वर्ष की थी।

धर्ममित्रा उछल सी पड़ीं। उसने अधीर स्वर से पूछा, उसका नाम क्या था।

वीणा।

धर्ममित्रा के प्राण उसके मुंह को आ गए उसने सांसरोक कर पूछा आपके श्वसुर का नाम क्या था?

रत्नाकर वर्मा। बे उच्चकुलीन क्षत्रिय थे। अच्छें योद्धा थे। उन्हें एक वही कन्या थी। किन्तु कन्या के जन्म के दो वर्ष बाद ही वे मर गए। धन नष्ट हो गया। कन्या को एक गरीब ब्राह्मण ने पाला पोसा उसी ने उससे मेरा विवाह किया। विवाह के बाद केवल एक बार मैंने अपनी, वधू के मुख को देखा। वह बड़ी ही भोली थी। स्वच्छ, पवित्र, अपूर्व सुन्दर। उसकी मूर्ति मेरे हृदय में अभी भी अंकित है। किन्तु वीरभद्र का गला रुंध गया। आँखों से आंसू बहने लगे।

धर्ममित्रा स्तब्ध सी होकर सुन रही थी। यह उसी का पति था। आज उसका पति जिसको पाने के लिए उनके भीतर अदम्य लालसा थी प्रेमी के रूप में प्राप्त हो गया था। जो वर रूप में सरल बाल्य हृदय में अंकित था जो अनेक परिस्थितियों में जाने पर भी हट नहीं सका था। वही इस समय हाथ पसारे सामने खड़ा था।

धर्ममित्रा के लिये इससे बढ़कर सुख के लिए दूसरी बात क्या हो सकती थीं? सो उसके भीतर से रुदन का प्रबल आवेश चला, जिसे दांत से अधर को दबाकर रोकने का वह असफल प्रयत्न करने लगीं

कुछ देर बाद, गला साफकर वीरभद्र ने अपना वाक्य पूरा किया, किंतु उसे विदा कराकर जब मैं घर चला तो नदी पार करते समय मेरे पूर्व जन्म के पाप से नाव उलट गई। और हम दोनों डूब गए। मैं किसी तरह बच गया, किन्तु उसका पता न चला।

अपने को किसी तरह संयत कर धर्ममित्रा ने पूछा, आप जिस प्रकार बच गए थे। उसी प्रकार क्या वे नहीं बच गई होंगी ?

कह नहीं सकता बड़ी खोज की थी, किन्तु पता नहीं चला। शायद वह नहीं बच सकी। कुछ रुककर धर्ममित्रा ने पूछा, यदि वे बच गई हों और मिल जाँय तब ?

मेरा जीवन धन्य हो जायगा।

धीरे से किन्तु दृढ़ कंठ से धर्ममित्रा ने पूछा किन्तु यदि वे भ्रष्ट हो चुकी हों, क्या तब भी आप उन्हें स्वीकार कर लेंगे ? वीरभद्र का मुंह सहसा लाल हो गया। तीक्ष्ण कंठ से बोला, ऐसा न कहें। यह सुनना भी मुझे बुरा लग रहा है। यदि वैसी स्थिति में वह मिल जाय तो मैं उसकी हत्या कर दूंगा और स्वयं भी आत्म हत्या लूंगा।

धर्ममित्रा के मन पर जोरों की चोट पहुंची। एक ओर तो उसे अपूर्व आनन्द का अनुभव हुआ तो दूसरी ओर बहुत बड़ी ग्लानि का बोध हुआ।

यह सोचने लगी कि जिस मेरी मूर्ति के सम्बन्ध में इनके हृदय में उज्ज्वल, पवित्र आस्था है, उसे पंकिल कर देना क्या अच्छा होगा ? इस देवता को जूठे का भोल लगाना क्या उचित होगा ? या इ. [illegible] क्या छल किया जा सकता है ? नहीं, नहीं, यह असम्भव है मेरा लुटा खजाना मिल गया, मेरे लिए यही बहुत है, किन्तु इसके उपभोग की इच्छा करना पाप होगा। आत्मा स्वीकार न करेगी। बराबर दम घुटता रहेगा। अतः विवाह स्वीकार न करूंगी। केवल सेवा का अधिकार लेकर ही संतोष करूंगी।

किन्तु तत्काल एक दूसरे विचार ने झकझोर कर रख दिया। उसने उसने सोचा भले यह शरीर पवित्र नहीं है, किन्तु आत्मा तो है। भाग्य से मिले सौभाग्य को हाथ मत निकलने दो। अपना परिचय मत दो। किन्तु विवाह कर नई जिन्दगी शुरू करो।

परन्तु इस विचार को आत्मा ने दुत्कार दिया। इस प्रकार धर्म-मित्रा अन्तर्द्वन्द्व में जलने लगी।

कुछ देर बाद पुनः वीरभद्र ने पूछा, मेरी बीती कहानी सुन ली। बोलो, अब प्रार्थना स्वीकार है।

वीरभद्र के प्रभाव को अस्वीकार करते हुए धर्ममित्रा को मालूम पड़ा कि उसके हृदय को कोई कैंची से कतर रहा है। असीम वेदना की अनुभूति हुई। किन्तु इधर स्वीकार करने के लिए मन की लाख कोशिशों के बावजूद आत्मा कत्तई तैयार नहीं हुई अतः अन्त में उसने किसी तरह अपने को संयत किया। और कुछ रुककर भरे गले से बोली बुरा मत मानिए। विवश होकर कह रही हूं। भिक्षुणी बनने के बाद विवाह कर गृहणी का जीवन स्वीकार करना अच्छा नहीं लगता। और शायद मैं गृहणी बनकर आपको सुखी भी नहीं कर सकूंगी।

वीरभद्र के अहं पर चोट लगी। उसे अपनी दुर्बलता पर ग्लानि हुई। सो उसने खिन्न स्वर कहा ठीक है। जाने दीजिए। मैं अपनी दुर्बलता से अभिभूत हो गया था। आपने गिरने से बचा दिया है। सचमुच मैं उस अबोध पवित्र नारी की अवहेलना कर सुखी नही होता।

धर्ममित्रा को फिर रुलाई आ गई। उसनें सोचा, उसी के एक रूप के प्रति ये इतना सम्मान प्रकट करते हैं। और, इस वर्तमान के प्रति अवहेलना करते हैं। हमारे दैव तुमने मुझे कहीं का नहीं रखा।

इतना सोचकर वह अत्यन्त अधीर हो गई। उसकी इस अन्तर्पीड़ा को वीरभद्र नहीं समझ सका। पूछा, अब आप क्यों रोती हैं ?

कुछ रुककर आंचल से आंसू पोंछकर धर्ममित्रा बोली, रोना ही तो भाग्य में लिखा है। वह मुझे कब छोड़ सकता है ?

भले सब छोड़ दें, तुमभी छोड़ दो।

आपतो उलटी बात कहती हैं। मुझे तो आपने ही छोड़ा है।

जाने दीजिए। एक बात कहती हूँ, मानिएगा ?

कहो।

मुझे कभी कभी सेवा करने का अवसर दीजिएगा ?

वीरभद्र आपका आडम्बर नहीं रख सका। बोला, तुम पर मेरा क्या अधिकार है ?

धर्ममित्रा कांप गई। कैसे कहे कि यह सब कुछ तुम्हारा है। सेवा प्राप्त करने का एक वास्तविक अधिकारी तुम्हीं हो। कुछ रुककर हृदय कड़ाकर उसनें पूछा, इतने दिनों के साथ के बाद भी क्या तुम्हारे हृदय में मेरा कोई स्थान नहीं है ?

बहुत बड़ा है।

तो क्या उतने से सेवा का अधिकार न दें सकोगे ?

क्या तुम मेरी परीक्षा लेना चाहती हो ?

कैसी ?

मैं मनुष्य हूं। देवता नहीं।

क्या मतलब ?

मुस्कराकर वीरभद्र ने कहा, तुमनें अपना सौन्दर्य कभी दर्पण में देखा है ?

इन अप्रासंगिक प्रश्न का आशय क्या है ?

आशय स्पष्ट है। इस अपूर्व सौन्दर्य की सेवा प्राप्त कर यदि मैं अपने को वश में नहीं रख सकूं तब ?

धर्ममित्रा के रोम रोम कदम्ब की तरह खिल उठे। भीतर से अब वह यही चहती थी कि वीरभद्र उसके साथ बर्बरता करे। क्योंकि स्वयं समर्पित होना उसके वश की बात नहीं थी। किन्तु बलात्कार को सहलेना उसके लिए कठिन नहीं होगा। अतः उसने पुलक कर कहा, वह समय जब आयेगा, तब देखा जायगा। अभी तो तुम्हें वचन देना होगा।

वीरभद्र गंभीर हो गया। पूछा, कल प्रातः मैं मगध जाऊंगा। क्या तुम भी चलोगी। कल नहीं चलूंगी। किन्तु शीघ्र मैं भी मगध जाऊंगी।

अच्छा तो यहाँ मिलना।

धर्ममित्रा उठकर खड़ी हो गई, पूछा आज भोजन क्या करोगे ?

जो खिला दोगी, खालूंगा।

नहीं कुछ कहो।

आज यह हठ क्यों।

तुम्हें चले जाना है, इसीलिए। और जानते हो, नारियों के हाथ में पाककला नामक एक यही बहुत बड़ा अस्त्र है जिससे वे निष्ठुर स्वच्छन्द पुरुषों को वश में कर सकती हैं। नहीं तो नर नामक जीव इतना विचित्र होता है कि कोई भी स्त्री, भले उर्वशी से भी अधिक सुन्दर हो, वश में नहीं रख सकती। दो दिनों के बाद ही

उसके भीतर से रूप की भूख मिट जाती है। वह भागने के लिए हाथ पैर छटपटाने लगता है। हंसकर वीरभद्र ने पूछा, तो तुम मुझे बांध कर रखना चाहती हो!

कोशिश करती हूं।

और वह हंसती हुई भीतर चली गई।

—०—

: ८ :

चन्द्रगुप्त के पहुँचने के पहले ही सम्राट् समुद्र गुप्त का देहान्त हो गया था, चन्द्रगुप्त को इसका बहुत दु:ख हुआ, किन्तु दैवेच्छा पर मनुष्य का अधिकार ही क्या है ? जो होना होता है होकर रहता है। उसे हंस कर भोगिए या रोकर भोगिए।

एक दिन तक तो चन्द्रगुप्त पितृ शोक से अत्यन्त व्यथित होकर नष्क्रिय सा पड़ा रहा, किन्तु दूसरे दिन राजनीति से विवश होकर उसे सक्रिय होना पड़ा।

मगध के सभी उच्च पदधिकारियों ने उससे आग्रह किया कि वह समुद्रगुप्त के आदेशानुसार सम्राट् पद को स्वीकार कर ले। किन्तु उसने रामगुप्त की स्वीकृति के बिना सम्राट् पद लेना स्वीकार नहीं किया।

इसी बिचार विमर्श में बारह दिन निकल गये। इस बीच सम्राट् की अन्त्वेष्टि क्रिया भी समाप्त हो गई। ज्येष्ठपुत्र होने के नाते राम गुप्त ने बड़ी शान्ति और श्रद्धा से समस्त श्राद्ध कर्म को समाप्त किया। वह लोगों से कहता था कि कुछ दुष्ट लोगों ने मेरे सम्बन्ध में पिताजी के कान भर दिये थे, अत: उनसे अनजाने मेरे प्रति अन्याय हो गया है। फिर भी उसके प्रति मेरे मन में श्रद्धा की कमी नहीं है।

सो, रामगुप्त की श्रद्धा और धर्म निष्ठा को देख कर कुछ लोग उसके पक्ष में भी बोलने लगे। प्राचीन पन्थी वैष्णवों के अतिरिक्त पाटलिपुत्र

के विहार का पीठाधिपति कालक राम गुप्त की ओर से जोर शोर से प्रचार करने लगा था। और वस्तुतः उसी ने रामगुप्त को शांति पूर्वक श्राद्ध समाप्त करने को सलाह दी थी तथा कान भर कर सम्राट पद के लिए तैयार भी किया था। वही रामगुप्त का प्रधान पक्षपाती था। संघर्ष के लिए उसने गुप्त रूप से तैयारी भी कराई थी।

तेरहवें दिन सूर्योदय के दो घड़ी बाद चन्द्रगुप्त के निवास स्थान पर मगध के प्रमुख पदाधिकारियों की गोष्ठी बैठी। भास्करगुप्त और विजय वर्मा के अतिरिक्त मगध के कुमारामात्य, महादंडनायक, भट्टाश्वपति दण्डपाशाधिकारी तथा महाप्रतिहार बैठे थे।

सन्ध्योपासन समाप्त कर चंद्रगुप्त उपहार के लिए गया था।

कुछ देर बाद, चंद्र गुप्त के आ जाने पर भास्कर गुप्त ने कहा, आयुष्मन आज अन्तिम निर्णय हो जाना चाहिए। क्योंकि, अब अधिक विलम्ब का होना मगध के लिए भयंकर सिद्ध हो सकता है।

महाप्रतिहार ने समर्थन के स्वर में कहा मुझे सूचना मिली है कि शकों से प्रेरित होकर यहाँ के कुछ बौद्ध बड़े राजकुमार को अपने षडयंत्र में सम्मिलित कर उपद्रव कराना चाहते हैं। चन्द्रगुप्त ने पूछा, आर्य, बौद्धों को लाभ क्या है?

बहुत बड़ा लाभ है। उसकी स्वार्थ सिद्धि का मार्ग प्रशस्त हो जायगा।

मैं ठीक से समझ नहीं रहा हूं।

गंभीर स्वर से महाप्रतिहार ने कहा, आयुष्मन आज बौध धर्म अपने मूलरूप में नहीं रह गया है। उसमें कई प्रकार की विकृतियाँ भू गई हैं। अतः कुछ लोग राज्याश्रय प्राप्त कर उन विकृतियो का खुला प्रचार चाहते हैं। वे सोचते है कि बड़े राजकुमार को वशीभूत कर लेने से बौद्ध धर्म के नाम पर मनमाना करने का सुयोग मिल जायगा।

शुष्क कंठ से चंद्रगुप्त ने कहा, बौद्ध धर्म से मेरा भी विरोध नहीं है। भगवान बुद्ध के उपदेशों का मैं आदर करता हूँ। किन्तु किसी भी धर्म को बल या प्रलोभन से किसी पर लादने का मैं विरोधी हूँ। मैं चाहता हूं कि अपनी आत्मा की प्रकार से कोई किसी भी धर्म को मानें उसमें राज्य की ओर से कोई प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए।

महादंडनायक ने मुस्कराकर, कहा इसीलिए वे लोग आपको नहीं चाहते हैं।

गंभीर स्वर से चंद्रगुप्त ने कहा, सचमुच समस्या कठिन है। फिर भी पूज्य, भैया के चाहने पर उनका विरोध कर मैं सम्राट पद नहीं ले सकूंगा। भास्करगुप्त नें तीक्ष्ण कंठ से पूछा, तब, क्या तुम चाहते हो कि गुप्तों का यह राज्यवंश समाप्त हो जाय ? मगध पर विदेशियों का शासन हो ?

नहीं यह मैं चाहता हूँ।

चाहते हो। कई बार समझाया गया कि शक्तिहीन विलासी रामगुप्त इस महान मगध साम्राज्य की रक्षा नहीं कर सकेगा। फिर भी तुम भी अपने हट पर डटे हो।

चंद्रगुप्त के मन में सम्राट पद का प्रलोभन तन कर खड़ा हो गया। वह चिल्लाकर कहने लगा कि अरे धर्मवीरु, तुम किस चिन्ता में पड़े हो ? तुम्हारा दोष क्या है ? पिता की आज्ञा मानो। मान लो यदि सचमुच रामगुप्त मगध की रक्षा न कर सका तो तुम्हारे पिता की आत्मा तुम्हें श्राप देगी। इसके अतिरिक्त देशहित के नाम पर प्रजा की इच्छा से अनुरूप आचरण करने में तुम्हें आपत्ति नहीं होनी चाहिए, यदि तुम स्वार्थ के लिये चाहते हो तो यह आपत्ति जनक बात होती।
अब चंद्रगुप्त का मन हाँ कर देने के लिए तैयार हो गया।

किन्तु तत्काल उसकी आत्मा कांप उठी । वह कराहकर बोली ओ चन्द्रगुप्त किसकी बात सुनते हो? वह तुम्हारा रास्ता नहीं है। क्या भारत को दशरथ ने राज्य नहीं दिया था। वशिष्ठादि सभी लोगों ने क्या राज्य ग्रहण के लिए उससे आग्रह नहीं किया था ? सो, तुम अपनी संस्कृति का अनादर मत करो । चंद्रगुप्त तिलमिला उठा। आहत कंठ से बोला, आप लोगों के आदेश की अवहेलना करने की इच्छा नहीं है। किन्तु मैं अपनी आत्मा का विरोध नहीं कर सकता हूँ। अत: भैया को ही सम्राट पद दे दिया जाय । मैं उनका सेवक बन कर देश की सेवा करूंगा।

इसी समय आंधी की तरह वहाँ राजकुमार राम गुप्त पहुँचा। वह क्रोध से कांप रहा था। आंखें लाल हो गई थीं।

उसे देखकर सभी लोग चौंककर खड़े हो गये अभिवादन कर चंद्रगुप्त ने कहा भैया आइए बैठिये।

कड़क कर रामगुप्त ने कहा, नीच चंद्रगुप्त भया कहते लाज नहीं आती है, मेरे अधिकार को छीनने का षडयंत्र करते संकोच नहीं हुआ ? किन्तु अब यह छल कपट नहीं चलेगा। मैं तुम्हें द्वन्द युद्ध के लिए ललकारता हूँ। आओ, युद्ध करो। जो जीतेगा, वह सम्राट बनेगा। और, उसने तलवार खींच ली।

पल भर के लिए सभी लोग सन्नाटे में आ गए। किन्तु तत्काल तडित् वेग से उपरिक महाराज भास्कर गुप्त तलवार खींच कर उसके सामने आ गए। और सिंह के समान दहाड़ करके बोले, रामगुप्त तुम जैसे कायर के साथ सम्राट चंद्रगुप्त का द्वन्द युद्ध करना अशोभन होगा। आओ मैं तैयार हूँ।

चंद्र गुप्त कांप उठा। और निमिषमात्र की देरी किए बिना उन दोनों के बीच में खड़ा होकर भरे गले से बोला, भैया आपको भ्रम हो

गया है। मुझे सम्राट पद की इच्छा नहीं है। आप उसके अधिकारी हैं। वह आपको ही प्राप्त होगा ।

फिर भास्कर गुप्त से अनुनय कर बोला, पूज्यवर, क्षमा करें। भैया को आशीर्वाद दें कि ये सकुशल राज्यभार वहन कर लें।

रामगुप्त उपरिक भास्कर गुप्त का महत्व मालूम था। वह जानता था कि उनके एक इशारे पर मगध का राजमुकुट बदल सकता है। लुट सकता है। जनता से लेकर सेना तक सबों के मन में समान रूप से उनका सम्मान व्याप्त था। उनकी इच्छा टालना किसी के लिए सरल नहीं था। अतः उसका आवेश शीघ्र समाप्त हो गया। तलवार झुक गई। वह भरे गले से बोला, पूज्य, क्षमा करें। आप पर मेरा ध्यान नहीं गया है। किन्तु मुझे जनता की सेवा का अवसर मिलना चाहिए।

चंद्रगुप्त ने आदर से रामगुप्त को बैठाकर कहा, भैया वह आपको अवश्य मिलेगा। चिन्ता न करें।

फिर भास्कर गुप्त से बोला, आर्य पिताजी नहीं रहे। अब हम लोगों के लिए आप ही उनकी जगह हैं। बच्चों पर क्रोध न करें। आसन ग्रहण करें।

बैठकर कुछ देर तक सोचने के बाद, धीरे से भास्कर गुप्त ने कहा मैं अब कुछ नहीं कहूँगा। तुम लोगों की जो इच्छा हो वही करो। किन्तु मैं कह देता हूँ कि सुखभोग की इच्छा से सम्राट पद की लोलुयता मगध को कलंक पंक में डुबो देगी।

रामगुप्त भास्करगुप्त के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। बोला, आर्य मैं सुख के लिए सम्राट पद नहीं चाहता हूँ। मैं केवल अपनी अयोग्यता के भ्रपूर्ण अपमान को मिटाने के लिए चाहता हूँ। मुझे केवल एक वर्ष के लिए अवसर दीजिए। और मैं आज ही बचन

देता हूँ कि एक वर्ष के बाद यदि आप कहेंगे तो मैं स्वतः राजमुकुट आपके चरणों में डाल दूँगा।

अच्छा, यही तो कह कर भास्कर गुप्त धीरे धीरे वहाँ से चले गए।

उनके चले जाने पर रामगुप्त तलवार फेंककर चन्द्रगुप्त से लिपट या। और गदगद कंठ से बोला, आयुष्मन, मुझे तुम्हारे संबंध में भ्रम हो गया था। क्षमा कर दो।

नीचे झुककर रामगुप्त का पैर छूकर चन्द्रगुप्त ने कहा भैया मेरे मन में कभी भी आपके प्रति दुर्भावना नहीं आई। आप विश्वास करें यह आपका सेवक जन्म भर अपकी सेवा करता रहेगा।

चन्द्रगुप्त का शील सौजन्य देखकर वहाँ उपस्थिति सभी लोगों का हृदय भर आया। इस महत्वपूर्ण स्वर्गोंम सुखदायी सम्राट पद को जिस तुच्छतों से चंद्रगुप्त ने ठुकरा दिया था।वह अपने आपमें अनुपमेय था। यदि उसने थोड़ा सा भी संकेत किया होता तो यह पद उसी को मिलता। रामगुप्त का वश नहीं था। विरोध करने पर वह स्वयं नष्ट हो जाता।

चन्द्रगुप्त ने महाप्रतिहार ने कहा, आर्यं, अब राज्य भिवेक के शुभ कार्य में बिलम्ब नहीं होना चाहिए। इसकी व्यवस्था के लिए धर्माध्यक्ष महोदय से निवेदन कर दें। मैं चाहता हूँ कि शुभ लग्न हो तो यह कार्य कल ही सम्पन्न हो जाय।

महाप्रतिहार ने कहा, आयुष्मन, धर्माध्यक्ष जी से मैंने पूछा था। कल शुभ लग्न है। चन्द्रगुप्त ने कहा, तब यह कार्य कल ही सम्पन्न हो जाय, इसकी व्यवस्था कर दें।

ठीक हैं। आदेश का पालन होगा। फिर तनिक रुककर उन्होंने कहा, किन्तु मैं बड़े महाराज कुमार जी से एक निवेदन करना चाहता हूँ।

रामगुप्त ने पूछा, आर्य, निस्संकोच कहें। मेरा निवेदन है कि आप अपने अनुज को भी कल ही युवराज पद पर अभिन्षिक कर दें। और, इनके बहुमूल्य परामर्श से राज्य संचालन करें।

यह बात रामगुप्त को रुची नहीं। क्योंकि उसे यह स्पष्ट पक्षपात सा प्रतीत हुआ। उसने सोचा, इनको यह कहने की क्या आवश्यकता थी? मैं स्वयं यह चर्चा चलाता तो चंद्रगुप्त संभवतः मेरा कृतज्ञ होता। यों तो यह उसकी अधिकार प्राप्ति की बात हो जाती है। फिर भी, वह मनके भाव को दबा कर मुस्कराते हुए बोला, हाँ हाँ पर यह कार्य भी कल ही सम्पन्न होगा।

फिर महादंडनायक की ओर घूमकर बोला, आर्य मैं कल कुछ चुने हुए सैनिकों को पुरस्कृत करना चाहता हूँ। आप इसकी व्यवस्था कर देंगे।

कुछ सोचकर महादंडनायक ने कहा, श्रीमान् शीघ्रता में यह कार्य ठीक नहीं होगा।

क्यों?

सनिकों को विशिष्ट सेवा के कारण अथवा किसी प्रतियोगिता में सफल होने पर ही पुरस्कृत करना चाहिए। अन्य उनमें परस्पर द्वेष-भाव उत्पन्न हो जाता है।

अपनी बात का खडंन रामगुप्त को अच्छा नहीं लगा। किन्तु महादंड नायक के तर्क संगत कथन का विरोध करना भी संभव नहीं लगा। फिर भी वह सैनिकोंको पुरस्कृत कर अपने अनुकूल बनाना चाहता था। अतः बोला, खैर, आप इसकी कल घोषणा कर देंगे। और यथा समय प्रबन्ध हो जाने पर पुरस्कार वितरित होगा। किन्तु कल सेना के पन्द्रह उच्च पदाधिकारियों को अवश्य परस्कृत किया जाय। इसकी व्यवस्था करें।

महादंड नायक को यह हठपूर्ण आदेश उचित प्रतीत नहीं हुआ, तथापि इस सक्रमण काल में इसका अधिक विरोध करना निरुपद्रव प्रतीत नहीं हुआ। अत: उन्होंने शुष्क कंठ से क
ठीक है, अभी जाकर आदेश पालन की व्यवस्था करता हूँ।

रामगुप्त प्रसन्न हो उठा। उठकर बोला, वत्स, अब चलता हूँ।

सबों ने खड़ा होकर रामगुप्त का अभिवादन किया। प्रसन्नतापूर्वक प्रत्यभिवादन कर वह चल पड़ा।

इतिहास की एक नाजुक घटना खिलखिला कर हंस पड़ी।

: ९ :

गगा के किनारे नगर प्राचीन से सटे एक पीपल का वृक्ष था। उस वृक्ष के चतुर्दिक सुन्दर वेदिका बनी थी। उसी पर पूर्व भिमुख एकाकिनी धर्ममित्रा बैठी हुई थी। सूर्यास्त होने में अभी दो घड़ी का विलम्ब था।

धर्ममित्रा ने चीवर धारण किया था, किन्तु उसका सिर मुन्डित नहीं था। अयोध्या में वीरभद्र से मिलने के बाद ही उसने मुन्डन कराना बन्द कर दिया था। क्योंकि उसके मन में वीरभद्र के प्रति जो मधुर भाव उत्पन्न हुआ था, वह मुन्डन का विरोधी था। विचित्र स्थिति में धर्ममित्रा को वीरभद्र की प्रार्थना का प्रत्याख्यान करना पड़ा था, फिर भी उसके मन से रतिभाव गया नहीं था। सो कभी तो धर्ममित्रा अपने पूर्व जीवन का गोपन कर वीरभद्र से विवाह के लिए आतुर हो जाती, और कभी उससे अलग रहने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेती। किन्तु कोई भी निर्णय स्थायी नहीं हो पाता।

इसी आंतरिक संघर्ष की अनिश्चित दशा में वह पाटलिपुत्र चली आई थी। वीरभद्र के युवक रूप का निरन्तर चिंतन करते रहने के कारण कलरात से उसके मन को मन्मथ मथ रहा था। फलत: धर्ममित्रा का चंचल मन दूसरी दिशा में भी देखने लगा था।

अपने लिए अपने प्रिय के मन में ईर्ष्या उत्पन्न करना भी स्त्रियों को अधिक सुखकर प्रतीत होता है। अत: धर्ममित्रा ने सोचा, जबकि

वीरभद्र से विवाह करना आत्मा को स्वीकार नहीं है, तब क्यों नहीं पाटलिपुत्र के किसी बड़े पदाधिकारी से मैं विवाह कर लूं ? इससे अवसर पाकर मैं वीरभद्र को सहायता दे सकूंगी तथा उसे निकट रख-कर उसके मन में अपने प्रति ईर्ष्या उत्पन्न कर सकूंगी ।

इस समय धर्ममित्रा इसी दिशा में सोचती हुई बैठी थी कि अचा-नक पीछे से आकर एक बौद्ध भिक्षु ने कहा, धर्ममित्रे तुम्हे संघस्थविर बुला रहे हैं ।

धर्ममित्रा ने चौंक कर देखा, पूछा, आप कौन हैं ?

मैं पाटलिपुत्र विहार का उपसंचालक हूँ । धर्ममित्रा खड़ी हो गई । अभिवादन कर बोली, आप मेरा नाम कैसे जानते हैं ? संघ-स्थविर से भी मेरा परिचय नहीं है फिर वे मुझे क्यों बुलाते हैं ? भिक्षु हंस कर बोला , अभी तुम बहुत ही अबोध हो । संघस्थविर को भी सामान्य प्राणी समझती हो ? उन्हें तुम्हारे संबन्ध में सब कुछ ज्ञात है।

सब कुछ ज्ञात है ?

घबराने की आवश्यकता नहीं है । वे तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं । चलो चकित सी धर्ममित्रा साथ में चल पड़ी ।

किन्तु सचमुच उस अबोध को मालूम नहीं था कि अयोध्या से ही उसके पीछे बौद्ध गुप्त चर लग चुके हैं जो उसकी गतिविधि की सूचना संघस्थविर को देते रहे हैं ।

वह कल पाटलिपुत्र पहुंची थी ।तबसे उसकी और निगरानी की जा रही थी । बौद्धों को भय था कि यह सचमुच वीरभद्र से विवाह न करले । वैसा होजाने पर उनके हाथ से एक बहुत बड़ा अस्त्र निकल जायगा ।

धर्ममित्रा संघस्थविर के निकट पहुंची । संघस्थविर शायद उसी की प्रतीक्षा कर रहे थे । उसे देखते ही बड़े प्रेम से बोले, ओह मधुराक

महिषी आगई ? आओ मैं बड़ी देर से तुम्हारी राह देख रहा था।

धर्ममित्रा चौंक कर खड़ी हो गई। उसने घूम कर पीछे की ओर देखा। उसने समझा कि पट्टराजमहिषी आ रही हैं और सम्बोधन उन्हीं के लिए है।

पुनः हंस कर संघस्थविर ने कहा धर्ममित्र पीछे क्या देखती हो ? मैंने तुम्हें ही पट्टराजमहिषी कहा है। आओ बैठो।

अभिवादन कर चकित सी होकर धर्ममित्रा ने पूछा, देव मुझ क्षुद्र भिक्षुणी से यह कैसा उपहार किया जा रहा है ?

यह उपहास नहीं है। बैठो। बतलाता हूँ।

निर्दिष्ट आसन पर धर्ममित्र बैठ गई। उसने संघस्थविर की ओर देखा संघस्थविर के मुख पर साधना का तेज चमक रहा था। सत्तर से ऊपर उम्र होने पर भी शरीर में दृढ़ता परिलक्षित हो रही थी। आंखों में विचित्र सम्मोहन की शक्ति थी।

कुछ रुक कर गंभीर स्वर से संघस्थविर ने कहा कल रात स्वप्न में मुझे भगवान तथागत ने तुम्हें सौंप कर कहा था कि यह मगध की पट्टराजमहिषी है। इसी से धर्म का उद्धार होगा।

देवि, तभी मैं तुम्हारी राह देख रहा था।

संघस्थविर ऐसे महान् व्यक्ति से अपने लिए पट्टराजमहिषी का विशेषण प्रयुक्त होते देखकर अनजाने ही धर्ममित्रा का रोम रोम पुलक उठा। फिर भी, उसने आश्चर्य से पूछा देव मैं एक अति तुच्छ भिक्षुणी हूँ। और वह उच्चपद इतना ऊँचा है कि उसकी ओर देखने से ही गर्दन टूट जायगी। फिर ।

फिर मैं क्यों कहता हूँ यही न ? धर्ममित्रे मुझ पर विश्वास करो मैं असत्य नहीं कहता हूँ।

देखो, इन आँखों की ओर। इनमें त्रिकाल ज्ञान की शक्ति है मैं स्पष्ट देखता हूँ कि तुम मगध की पट्टराजमहिषी हो। समस्त मगध सम्राज्य तुम्हारे पैरों के नीचे पड़ा है ।

मग के बिना भी धर्ममित्रा को प्रतीत हुआ कि उसे नशा चढ़ रहा है अतः समस्त विचार भूल कर पट्टराजमहिष पद प्राप्त करने पर मिलने वाले सुख सम्मान की मधुर कल्पना में कुछ देर के लिए विलीन हो गई।

पुनः संघस्थविर ने कहा, देवि परन्तु इसके लिए प्रयत्न करना पड़ेगा।

चौंक कर धर्ममित्रा ने पूछा मुझे प्रयत्न करना पड़ेगा ?

तुम्हें और मुझे भी।

मैं क्या कर सकती हूँ ?

बहुत कुछ कर सकती हो। तुममे अपूर्व शक्ति है। उस शक्ति का सस्कार करना पड़ेगा। वह मैं करूंगा। किन्तु इस पद के मोहने धर्म मित्रा के समस्त विवेक को पद दलित कर दिया। वह उसकी प्राप्ति के संदर्भ में ही सोचने लगी। उसने तो इसके पहिले ही निर्णय कर लिया था कि किसी उच्च पदाधिकारी से विवाह कर वीरभद्र के मन में ईर्ष्या उत्पन्न करूंगी। और उसे अवसर पर सहायता देकर कृतज्ञ बनाऊंगी तथा अपनी आत्मा को भी सुखी करूंगी। सो, इस समय इच्छा की पूर्ति के लिए अप्रत्याशित रूप से सुनहले अवसर की सम्भावना उत्पन्न हो गई थी। अतः उत्कंठा से उसने पूछा, देव किन्तु क्या ?

तीक्ष्ण दृष्ट से धर्ममित्रा को देखकर, गंभीर कंठ से संघस्थविर ने कहा, किन्तु तुम्हें एक प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी।

कैसी प्रतीज्ञा ?

पहले वचन दो कि आप जो कहेंगे, उसे शपथ पूर्वक पूर्ण करूँगी। तब कहूँगा।

पदमदमत्ता धर्ममित्रा ने कह दिया, देव आप जो कहेंगें उसे पूर्ण करने की मैं शपथ लेती हूँ संघस्थविर की आंखों में चमक आ गई। उन्होंने कहा तुम्हें बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के लिए सम्राट को तैयार करना होगा।

किन्तु मेरे कहने से।

हाँ, तुम्हारे कहने से वह बौद्धधर्म स्वीकार कर लेगा। परन्तु उसके लिए शीघ्रता की आवश्यकता न होगी। कौशल से काम लेना होगा। मुझे मालूम है कि तुममें वह शक्ति है कि तुम उसे अभिभून कर बौद्ध बना सकोगी।

कुछ रुककर धर्ममित्रा ने कहा, मुझे तो अपने पर बिश्वास नहीं होता।

तुम्हें अभी अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं है किन्तु मैं जानता हूँ वह शक्ति तुममें है। हाँ उस पद को पाने के लिए उसका परिष्कार करना पड़ेगा।

क्या करना होगा ?

परिश्रम पूर्घक तुम्हें दो महीनों तक नृत्य और संगीत की शिक्षा ग्रहण करनी होगी। साथ ही के लिए कला का सूक्ष्म अध्ययन करना होगा। इन विषयों की शिक्षा मुझे कहाँ मिलेगी ? उसका प्रवन्ध मैं कर दूँगा। वैशाली की नगर वधू शिप्री से कहूँगा, वह तुम्हें शिक्षा

बैशाली जाना होगा ?

नहीं उसे ही बुला लूँगा। वह मेरी शिष्या है, आ जायेगी और जब तुम्हारा अध्ययन समाप्त हो जायेगा, तब मैं सम्राट रामगुप्त से

पंचनद की राजकुमारी कहकर तुम्हारा परिचय कराऊँगा चिन्तित स्वर से धर्ममित्रा ने कहा, देव सुना है, यहाँ राजकुमारी ध्रुवस्वामिनी आई है। वह मुझे पहचानती है।

हंसकर संघस्थविर ने कहा, उसने तुम्हें भिक्षुणी के रूप में देखा होगा। किन्तु राजकुमारी के रूप में वह तुम्हें पहचान नहीं सकेगी, क्योंकि वस्त्रालंकरणों से अलंकृता राजकुमारी मन्दाकिनी को देखकर उसकी आँखें चौंधिया जायेंगी। फिर भी तुम, उससे अलग रहने का प्रबन्ध करना।

धर्ममित्रा ने समझ लिया कि अब से उसका नाम मन्दाकिनी होगा। उसने पूछा, देव सुना था कि सम्राट पद चन्द्रगुप्त को मिला था किन्तु अभी आपने रामगुप्त का नाम लिया है। क्या बात बदल गई है ?

हाँ, अनर्थ होते होते बचा है। चंद्रगुप्त कट्टर वैष्णव है। दुष्ट प्रकृति का है। वह यदि सम्राट बन जाता तो मगध साम्राज्य से बौद्ध धर्म का नाम मिट जाता। तथागत की कृपा है कि अब सम्राट पद रामगुप्त को मिल रहा है। कल ही राज्य भिषेक होगा।

कुछ रुक कर धर्ममित्रा ने पूछा, क्या सच है कि रामगुप्त विलासी प्रकृति के हैं ?

तो बुरा क्या है ?

तब क्या वे साम्राज्य की रक्षा कर सकेंगे ?

मेरी बात मानेगा तो निष्कंटक राज्यसुख का भोग करेगा।

क्या उसे शकों का भी भय नहीं होगा ?

कुटिलता से हंसकर संघस्थविर ने कहा, शकों से सन्धि करा दूंगा। साथ ही, शक लोग बौद्ध हैं वे दूसरे बौद्धराज्य पर आक्रमण नहीं करेंगे। खैर तुम निश्चिन्त रहो। मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि तुम्हारा पद सुरक्षित रहेगा।

धर्ममित्रा को असीम आनन्द का अनुभव होने लगा। उसने सोचा, महिर्षी पद प्राप्त हो जाने पर मैं वीरभद्र को प्रधान सेनापति पद दिला दूंगी। और इस प्रकार उसे कृतज्ञ बनाकर उससे शरीरिक सम्पर्क भी स्थापित कर लूंगी। ओह, सब तरह का सुख मिलेगा। यों सोचकर उसका अंग अंग मधुर मदिर आनन्द प्रवाह में डूब गया। उसने आंखें मूंद लीं।

कुछ रुककर संघस्थविर ने कहा, धर्ममित्रा, जाओ विश्राम करो। फिर कल मिलूंगा।

धर्ममित्रा चौंककर उठी। और मदहोश सी बाहर चल पड़ी।

: १० :

सम्राट् पद पर राजकुमार रामगुप्त का अभिषेक हो गया था। सामान्य रूप से शान्ति पूर्वक वह शासन सञ्चालन का कार्य कर रहा था। साथ ही सेनापति के अनुरोध पर चन्द्रगुप्त सेना को सुसंगठित तथा दक्ष करने के कार्य में तत्परता से लग चुका था। इस प्रकार मगध का शासन पुन: शान्ति से चलनें लगा था।

इस बीच विविध व्यस्तता के कारण चन्द्रगुप्त को राजकुमार ध्रुवस्वामिनी से मिलनें का अधिक अवसर नहीं मिल सका था हृदय में मिल की उत्कंठा रहते हुए भी कार्य भार से इच्छा को दबाना पड़ता था। वह ध्रुवस्वामिनी की सूचना पर बहुत थोड़े समय के लिए केवल दो बार मिल सका था।

अभी तक ध्रुवस्वामिनी राजकीय अतिथि शाला में ही रहती थी, नियमानुसार सम्राट् की ओर से उसके विवाह का निर्णय नही किया जा सका था। परन्तु चन्द्रगुप्त के मन में यह विश्वास सा हो गया था, कि सम्राट रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी का विवाह उसी के साथ करने का निर्णय कर देंगे। अत: अपनी ओर से अभी तक उसने इसके लिए कोई चेप्टा नहीं की थी।

साथ ही, चन्द्रगुप्त को अपने जेठे भाई से विवाह के लिए क लज्जा का भी अनुभव होता था।

परन्तु आज न जाने क्यों चन्द्रगुप्त के मन में ध्रुवस्वामिनी के अनजानी कसक सी उठने लगी थी। उसकी लावरायमय स्वर्णिम देह यष्टि, कर्ण प्रिय स्वर वलात् अपनी ओर खींचने लगे थे।

अत: वह सब कुछ भूल कर आँख मूंदकर, हृदयस्थ राजकुमारी की मूर्ति को देखने तथा उसे काल्पनिक रुप में आत्मसात् करने रस में निमग्न हो गया।

बड़ी देर बाद आंखे खुलीं, तो वह स्थिर न रह सका, उठा और ध्रुवस्वामिनी से मिलने के लिए तैयार होने लगा।

सन्ध्या हो गई थी। घूंघट पट खोले गोरी रात नई दुलहिन, सी फूलों की क्यारी में टहलने जा रही थी। उसके पीछे पीछें रसीला चांद उसे छेड़ता हुआ हँस रहा था।

चन्द्रगुप्त तैयार होकर बाहर निकला। अतिथि शाला की ओर चल पड़ा।

दोनों ओर बराबर आग लगी थी। ध्रुव गवाक्ष का पट खोल चंद्रगुप्त के महल की ओर से आने वाले पथ पर आँख बिछाये खड़ी थी। घर द्वार पिता माता संगी सहेली छोड़कर जिस पिया मिलन के लिए वह आई थी उसके न मिलने से उसे कितनी वेदना होती होगी यह समझना कठिन नहीं। फिर भी "आशावन्ध कुसुम सदृश: प्रायशो ह्यङ्गनानाम्" के अनुसार वह जी रही थी।

सहसा उसे चन्द्रगुप्त का रथ दिखलाई पड़ा। वह आनन्दातिरेक से बिहुल हो गई। आँखों से आनन्दाऊ की धारा बह चली।

चंद्रगुप्त रथ से उतर कर सीधे ध्रुवस्वामिनी के प्रकोष्ठ में आया। नम्रता से बोला आर्यें सेवक को क्षमा करें। राजकीय कार्य की व्यस्तता से चाहकर भी सेवा में उपस्थित नहीं हो सका हूँ।

ध्रुवस्वामिनी का गला भरा था। बोल न सकी। बद्धांजलि प्रणाम कर बैठने का संकेत किया।

चन्द्रगुप्त ने देखा, आँखों से आंसू बह रहे। चिन्तित स्वर से पूछा, आर्या को कोई कष्ट है ?

कुछ रुककर गले को साफ कर धीरे से ध्रुवस्वामिनी बोली, निगोड़े आँसुओं पर वश नहीं है, किन्तु शब्दों पर तो है। व्यर्थ ही किसी को कष्ट कथा सुनाने से लाभ क्या है ? बैठिए।

चंद्रगुप्त बैठ गया, और उसके सामने ध्रुवस्वामिनी भी बैठ गई।

कुछ रुककर पुनः चंद्रगुप्त ने कहा, मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूं। दंड के लिए भी तैयार हूँ। किन्तु आर्य स्पष्ट कहें। क्या कष्ट हुआ है ?

सतृष्ण दृष्टि से चंद्रगुप्त को देखती हुई ध्रुवस्वामिनी बोली, आपको ज्ञात है कि कन्या पितामातादि के मर्मन्नुद वियोग को किस सुख की आशा पर सहती है ?

चद्रगुप्त ने मुस्कराकर कहा, जी हाँ। प्रति सुख के लिए उस दुःख को सहती है।

और, बह पति भी उसे छोड़ दे तो किस आशा पर दुःख सहे ?

चंद्रगुप्त ने गंभीर स्वर से पूछा, आर्य, इस पीड़ामय प्रसंग को क्यों उठा रही है ?

ध्रुवस्वामिनी ने क्रुद्ध कठ से पूछा, क्या यह प्रसंग अप्रा-संगिक है ?

कुछ रुककर चन्द्रगुप्त नें पूछा, क्या राजकुमारी को मुझ में कुछ अविश्वस्ता का लक्षण मिला है। सिर नीचेकर ध्रुवस्वामिनी बोली, पापिन लज्जा जीभ ऐंठ देती है। क्या कहूँ ? और बह रोने लगी।

अब चंद्रगुप्त के सामनें कुछ कहने सुनने के लिए शेष नहीं रहा। ध्रुवस्वामिनी के आँसुओं ने उसके हृदय की वेदना को स्पष्ट उपस्थित कर दिया। सो चंद्रगुप्त का हृदय भी अधिक अधीर हो उठा।

इस अपूर्व रूपवती युवती का आत्म समर्पण के लिए अधीर होना शिव ऐसे हठी निग्रही के हृदय को भी चंचल कर देने के लिए पर्याप्त था। फिर चंद्रगुप्त ऐसे रसिक प्रेमीके लिए तो करने की बात ही नहीं है। अतः व्याकुल कंठ से चंद्रगुप्त ने कहा, आर्य, क्षमा करें। पूज्य पिताजी के वियोग के कारण मेरी मानसिक स्थिति ठीक नहीं थी। इसलिए मेरी अनवधानता से आपको कष्ट सहना पड़ा है। किन्तु अब बिलम्ब नहीं होगा। मैं अभी भैया के निकट जाता हूं। और उनसे लज्जा खोलकर स्वयं कहूंगा। आशा है, कल हीं यह शुभ कार्य सम्पन्न हो जायगा। किन्तु………

क्या ?

किन्तु इस सेवा के लिए मैं कुछ पुरस्कार चाहता हूँ।

ध्रुवस्वामिनीं का हृदय गुदगुदा उठा। जांघो में सनसनाहट सा मालूम पड़ी। आँखों से मद उड़ेलती हुई धीरे से बोली, कार्य पूरा कीजिए। पुरस्कार मिलेगा।

चंद्रगुप्त ने शरारत से कहा, नहीं, मुझे विश्वास नहीं हैं।

कैसे विश्वास होगा ?

कुछ अग्रिम पालेनें से ध्रुवस्वामिनी को आत्मनियंत्रण करना कठिन प्रतीत हुआ। अतः चन्द्रगुप्त को चिकोटीकाट कर वह नृत्य की मुद्रा में मोहक पंक्षेप करती हुई तथा वक्रकराक्ष से आगमन का निमत्रण देती हुई पार्श्वस्थ शयन कक्ष में चली गई।

चंद्रगुप्त को प्रतीत हुआ कि कोई बहुत बड़ी आंधी उसे तिनके की तरह उड़ाये जा रही है। सो वह उठा, और जिस कक्ष में ध्रुव-स्वामिनी गईं थी, उधर ही बढ़ा।

किन्तु ठीक इसी समय एक सेविका ने आकर कहा, श्रीमान् सम्राट का संदेश लेकर महाप्रतिहारी आये हैं ।

चंद्रगुप्त को घूमना पड़ा । पूछा, क्या कहते हैं ?

दर्शन कर स्वयं निवेदन करेंगे।

बुला लाओ, कहकर चंद्रगुप्त पुनः पूर्वासन पर बैठ गवा ।

ध्रुवस्वामिनी शयन कक्ष में जाकर पर्यंक पर लेट गई थी । आँखें बन्द कर ली थीं और तीव्र कामेच्छा से अभिभूत होकर सोच रही थी कि चन्द्रगुप्त अवश्य पीछे से आयेगा, और अग्रिम पुरस्कार प्राप्त करेगा । सो, सांस रोक कर वह पदचाप की व्याकुल प्रतीक्षा कर रही थी । किन्तु "प्रथम ग्रासे मक्षिका पाता" की तरह उसे सेविका का स्वर सुनाई पड़ा । क्रुद्ध उठी । किन्तु विवशता थी । वह भी बाहर आकर बैठ गई । प्रतिहारी ने आकर अभिवादन कर कहा, देव, परम - भट्टारक सम्राट ने आशीर्वाद देकर आपको देखने को इच्छा प्रकट की है ।

क्या शीघ्र ?

जी हाँ । वे प्रतीक्षा में बैठे हैं ।

चंद्रगुप्त ने ध्रुवस्वामिनी को तृषितनेत्र से देख कर कहा, आर्य सम्राट की सेवा में स्वयं जाना चाहता था, तब तक उनका संदेश भी आ गया । यह शुभ लक्षण है आंखों से मादक संकेत करती हुई ध्रुव-स्वामिनी बोली, अच्छा है, आपको उचित पुरस्कार भी मिलेगा । चंद्रगुप्त प्रतिहारी के साथ चला पड़ा ।

चंद्रगुप्त के मन में विश्वास हो गया कि सम्राट ने ध्रुवस्वामिनी से विवाह कर देने को बात बताने के लिए ही उसे बुलाया है । अतः उसका हृदय आनन्द से भर उठा । अभी थोड़ी देर पूर्व ध्रुवस्वामिनी के समीप से जिस मधुर मादकता की अनुभूति हुई थी वह इस समय

उसके अन्तश्चेत को आप्लावित करने लगी । दिव्य आनन्द का अनुभव होने लगा । अतः उसने मनमें निर्णय किया कि सम्राट का आदेश मिल जाने पर आज ही ध्रुवस्वामिनी को अपने महल में बुला ले जाऊंगा । अब उससे एक क्षण का भी वियोग सहन नहीं है ।

इस प्रकार ध्रुवस्वामिनी में तन्मय बना चन्द्रगुप्त सम्राट रामगुप्त के सामने पहुंचा । रामगुप्त उसी की प्रतीक्षा कर रहा था । चंद्रगुप्त के प्रणाम करने पर उसे अंक में भरकर आर्शीवाद दिया । प्रेम से समीप बैठाया । फिर गद्गद कंठ से पूछा, तुम्हारा स्वास्थ्य तो अच्छा है ?

आपकी कृपा से प्रसन्न हैं ।

नहीं तो तुम कुछ दुर्बल मालूम पड़ते हो ।

रामगुप्त के इस प्यार से चन्द्रगुप्त को अपने पिता का स्मरण हो, आया । और उसे बोध हुआ कि पिता की कमी को भैया पूरा कर देंगे । सो उसने भरे गले से कहा, आर्य आपकी स्नेह दृष्टि मुझे देखती है । मैं ठीक हूँ । किन्तु आज आपके मुख पर खिन्नता दिखलायी पड़ती है । यह क्यों ?

वस्तुतः रामगुप्त इस समय बहुत उद्विग्न था । वह इस समय उद्विग्नता को छिपाने का बहुत प्रयत्न कर रहा था, किन्तु उसे इसमें सफलता नहीं मिल सकी । चंद्रगुप्त के पूछने पर उसका अन्तर्द्वन्द बहुत प्रबल हो उठा । उसने सिर नीचे कर लिया । बोला नहीं ।

चंद्रगुप्त ने पुनः उसके मुख पर दृष्टि डाली इस बार वहां की खिन्नता और अधिक स्पष्ट हो गई थी । अतः चन्द्रगुप्त ने अधीर होकर पूछा, आर्य आपको किस बात की चिन्ता है । आज्ञा दें । मैं इसे दूर करने का प्रयत्न करूंगा ।

रामगुप्त ने सिर उठा कर लम्बी सांस ली। होंठ को धीरे से दाँत से दबाया दायें हाथ को सिर पर घुमाया। फिर तनिक रुककर बोला, मैं सम्राट पद छोड़कर कहीं एकांत में शांत जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। अब तुम्हें ही यह पद सम्भालना होगा।

चौंककर चंद्रगुप्त ने पूछा, आर्य, आपके मन में यह उद्विग्नता क्यों आ गई है।

कहना बड़ा कठिन है।

मुझसे कहने में संकोच न करें। प्राण देकर भी आपको प्रसन्न करने का प्रयास करूंगा।

शुष्क हंसी हंस कर रामगुप्त ने कहा, वत्स चंद्रगुप्त तुम्हारे ऊपर मैं अविश्वास नहीं करता हूँ। किन्तु इतना निश्चित है कि सुनने के बाद तुम भी अपने वचन पर दृढ़ नहीं रहोगे।

चंद्रगुप्त उत्तेजित स्वर से बोला, आर्य ईश्वर की शपथ लेकर कहता हूँ, कि आपके वचन को मैं अवश्य पूर्ण करूँगा। कहिए।

कुछ रुककर धीरे से रामगुप्त ने कहा, वत्स चंद्र मैं राजकुमारी ध्रुवस्वामिनी से विवाह करना चाहता हूँ। तुम उसे तैयार कर दो।

चंद्रगुप्त को मालूम पड़ा कि उसके शरीर में एक साथ सैकड़ों बर्छियां चुभ गई है। वह प्राणांतक वेदना से व्याकुल होकर वहीं ही निरींहता से रामगुप्त को देखने लगा। कुछ बोल न सका।

चन्द्रगुप्त की स्थिति देखकर उपेक्षा से हंसकर रामगुप्त नें कहा' मैंने तो पहले ही कहा था कि तुम दृढ़ न रह सकोगे।

चंद्रगुप्त विमूढ़ सा मुंह खोले चुपचाप रामगुप्त को देखता रहा। उसका मन किसी तरह इन कटु सत्य पर विश्वास करने के लिए तैयार हीं हो रहा था। अब भीं वह सोचता था कि सम्राट उससे उपहास कर रहे हैं। सो वह केवल व्याकुल प्रतीक्षा दृष्ट से देखता रहा।

चंद्रगुप्त गुप्त को न बोलते देखकर पुनः रामगुप्त ने कहा, ईश्वर की सौंगन्ध तोड़ना भी कोई बड़ी बात नहीं है चिन्ता मत करो मैं कल सूर्योदय से पूर्व ही हिमालय की ओर प्रस्थान कर दूंगा।

चंद्रगुप्त चौंक उठा। उसने अपने मन रूपी मेमने को कर्तव्य की कठोर शिला पर क्रूरता से पटककर बोला, आर्य आपकी इच्छा पूर्ण होगी। मैं राजकुमारी को तैयार करूंगा। किन्तु……

क्या ?

राजकुमारी के सम्मान पर आघात नहीं पहुंचना चाहिए।

झट से रामगुप्त बोला, हाँ मैं वचन देता हूं कि यदि वैसा कुछ हो तो तुम स्वयं मेरा सिर काट देना। यह मेरी ही आज्ञा है।

अच्छा, अब आज्ञा दीजिए कह कर चन्द्रगुप्त चल पड़ा।

: ११ :

विहार के अन्त: प्रकोष्ठ में चतुष्पादिका पर बिछे हुए कोमल ऊर्णासन पर सेमल की रूई से भरे मोटे उपाधान के सहारे संघस्थविर कालक लेटा हुआ था। उसके सामने रजतपीठ पर वैशाली की नगर वधू शिप्रा बैठी थी। शिप्रा प्रौठावस्था की सुन्दरी महिला थी। यद्यपि उसकी युवावस्था जाने को तैयार थी, फिर भी शिप्रा ने मानों अनुनय कर उसे रोक लिया था। अपने समण में वह भारत की सर्वश्रेष्ठ गायिका नर्तकी थी। देश विदेश में उसकी ख्याति फैली हुई थी। सघस्थविर को वह गुरुतुल्य मानती थी। संघस्थविर के आदेश से धर्ममित्रा को उसने अपनी शिष्या बना लिया था। और महीने दिन से वह धर्ममित्रा को प्रशिक्षित कर रही थी।

सघस्थविर ने मुस्कराकर पूछा, शिप्रे शिष्या की शिक्षा में कैसी प्रगति है ?

देव वह बिलक्षण प्रतिमाशालिनी है। इन थोड़े दिनों में ही आश्चर्यजनक रूप से उसने सगीतादि समस्त कलाओं में निपुणता प्राप्त कर ली है।

प्रसन्न स्वर से संघस्थविर ने पूछा, और केलि कला में ?

उसके सैद्धान्तिक ज्ञान में भी वह परम पटु हो गई है फिर सिर नीचे कर हंस कर धीरे से बोली और मैं समझती हूं कि व्यव-हारिक ज्ञान में भी वह अपटु नही है।

संघस्थविर ने कहा, शिप्रे, यदि सचमुच वह इतनी कुशल हो गई है,तो इसका श्रेय तुम्हीं को मिलेगा। और बौद्ध धर्म तुमरा चिर ऋणी रहेगा। किन्तु ......

किन्तु क्या देव ?

उसे बहुत बड़ी प्रतियोगिता में भाग लेना है। पता नही, सफल हो या नहीं ?

आप चिन्ता न करें। अब वह उर्वशी के साथ भी प्रतियोगिता में सफल हो सकती है। किन्तु वह कौन है, जिसके साथ उसे प्रतियोगिता में भाग लेना है ?

अयोध्या की राजकुमारी ध्रुवस्वामिनी। सुना है, वह अपूर्व सुन्दरी है। रामगुप्त उस पर अनुरक्त हैं। मैं चाहता हूं कि रामगुप्त उस के वश में नहीं हो,

उसके वश में होने से हानि क्या है ?

वह शकों से घृणा करती है। अतः शकों के साथ संघबद्ध होने में वह वाधा उपस्थिति कर सकती है।

कुछ चिन्ति स्वर में शिप्रा ने पूछा, शक लोग विदेशी हैं, उनके साथ संघबद्ध होने से क्या मगध की हानि नहीं होगी ? या शक जाति क्या इस देश को आत्मसात न कर लेगी ?

संघस्थविर बोला, मुझे आज केवल बौद्ध धर्म की उन्नति को देखना है। और कुछ नहीं सोचना है।

शिप्रा ने शंका की, देव, एक धर्म होने पर भी जातिगत तथा देश गत पार्थक्य मिटना असंभव है। अतः वैसी स्थिति में शकों की ओर से मुझे भय होता है।

झुंझला कर संघस्थविर बोला, शिप्रे, वह बहुत दूर की बातें है। इसके लिए अभी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। मेरा विचार

है कि शकों के दबाने से यदि मगध में बौद्धधर्म को पुनः राज सम्मान मिल जाय तो वह अपने पूर्व गौरव को फिर प्राप्त कर लेगा। इसके बाद, शकों को वशीभूत कर लेना कठिन नहीं होगा।

इसी समय एक शिष्य ने आकर निवेदन किया, देव शक सम्राट रुद्रसिंह का गुल्मनायक गुप्तवेश में आया है। वह सेवा में उपस्थित होना चाहता है।

संघस्थविर सजग होकर बैठ गया। प्रसन्न स्वर से बोला, मुझे उसी की प्रतीक्षा थी। बुला लाओ।

फिर शिप्रा की ओर घूमकर बोला, शिप्रे बौद्धधर्म तुम्हारा ऋणी रहेगा। अपनी पूर्ण शक्ति से धर्ममित्रा को प्रशिक्षित करो। अच्छा, अब तुम जा सकती हो। शिप्रा प्रणाम कर चली गयी।

शिप्रा के जाने के कुछ क्षण बाद ही बौद्ध भिक्षु के वेश में गुल्मनायक आया। उसने संघस्थविर को बड़ी विनम्रता से प्रणाम किया। और उसने संघस्थविर के चरणों के समीप झोली से निकाल कर एक छोटी सी स्वर्ण मञ्जूषा रख दी।

आशीर्वाद देकर संघस्थविर ने पूछा, वत्स, यह क्या है?

मञ्जूषा को खोलकर गुल्मनायक बोला, देव, सम्राट ने श्रीचरणों में प्रणाम के रूप में इसे उपस्थित करने का आदेश दिया है। संघस्थविर ने देखा, मञ्जूषा में एक दिव्य मणिमाला थी। उसका मूल्य नव लाख से कम नहीं था। इस महाधन को देखकर संघस्थविर की आँखें चमक उठी। बड़े ही प्रेम से गुल्मनायक को अपने सामने बैठाकर संघस्थविर ने कहा वत्स सम्राट से मेरा आशीर्वाद कह देना। किन्तु मुझे विरागी के लिए इस महाधन को भेजने की आवश्यकता थी।

गुल्मनायक ने विनम्र स्वर से कहा, भन्ते, सम्राट को मालूम है कि देव ऐसे वीतराग के लिए समस्त संसार की सम्पत्ति भी तुच्छ तथा हेय है। परन्तु इस नगराय पदार्थ को सम्राट ने श्री चरणों की सेवा में धर्मवृद्ध में सहयोग देने के लिए भेजा है। संघस्थविर ने गदगद कंठ से कहा, मुझे ज्ञात है कि सम्राट रुद्रसिंह उदारबुद्धि तथा विचार शील व्यक्ति हैं। मैं निरन्तर उनके अभ्युदय की कामना करता हूँ।

कुछ रुककर गुल्मनायक बोला, देव, हमारे सम्राट के हृदय में बौद्धधर्म के प्रति गहरी आस्था है। उनकी हार्दिक इच्छा है कि भारत में पुनः बौद्ध धर्म अपने पूर्व रूप में मान्तता प्राप्त कर ले। किन्तु……

उत्तेजित स्वर से संघस्थविर ने कहा, किन्तु मगध आदि कुछ प्रतिष्ठित राज्यों में राज्याश्रय प्राप्त किए बिना सम्भव नहीं, सम्राट का यही आशय है ?

जी हाँ। सम्राट का विचार है कि बौद्धधर्म को पुनः प्रतिष्ठापित करने के लिए मगध के सम्राट को भी बौद्ध होना चाहिए।

सम्राट का विचार ठीक है मैं भी यही चाहता हूँ।

गुल्मनायक ने पूछा, किन्तु देव, मगध का गुप्तवंश वैष्णव है इसे,

हां इसमैं परिवर्तन अपेक्षित है। मैं प्रयत्न में हूँ किनये सम्राट रामगुप्त को बौद्धधर्म में दीक्षित कर लूं।

क्या यह संभव है ?

प्रयत्न करने पर सम्भव है।

कुछ रुककर गुल्मनायक बोला, हमारे सम्राट आपको इस कार्य में हर प्रकार का सहयोग देंगे। उनका तो यहां तक विचार है कि आवश्यकता पड़ने पर दबाव डालने के लिए वे सैनिक आक्रमण भी कर सकते हैं।

अभी उसकी आवश्यकता नहीं है । यदि हुई, तो मैं स्वयं सम्राट की सेवा में संवाद भेजूंगा । और मेरी सहायता से सम्राट को सैनिक अभियान में काफी सहायता मिल जांयगी । गुल्मनायक की आँखें चमक उठीं, प्रसन्न कंठ से बोला भन्ते, हमारे सम्राट के हृदय में मगध की प्रति कोई दुर्भावना नहीं है । केवल धर्मवृद्धि के विचार से वे आपको हर प्रकार का सहयोग देना चाहते है ।

सघम्थविर ने कुछ रुककर कहा, वत्स मुझे तुम्हारे सम्राट की सदाशयता के प्रति कोई आशंका नहीं है । यों मैं देश और जाति के भेद को नहीं मानता हूँ । मेरे विचार में समस्त विश्व एक देश है, और सम्पूर्ण मानव एक जाति के हैं । हमारे तथागत ने विश्व को यही सदेंश दिया है । हम लोग समस्त विश्व को अपना मानकर प्राणियों के हित के लिए बौद्ध धर्म का प्रचार करना चाहते हैं ।

कुटिल गुल्मनायक को संघस्थविर की यह मान्यता अच्छी नहीं लगी । वह अपनी जाति से इतर जातिवालों को निम्नकोटि का मानने वाला था । उनकी महत्वाकांक्षा थी कि समस्त विश्व पर उनका शासन होना चाहिए । उन्हें बौद्ध धर्म के प्रति कोई आस्था नहीं थी । केवल राजनीतिक लाभ की दृष्टि से वे बौद्धधर्म का मानने का आडम्बर करते थे । अत: इस समय विरोध के बावजूद कूटनीतिक दृष्टिकोण से इस धर्मान्ध वृद्ध को प्रसन्न रखने के लिए उनके कथन का समर्थन करते हुए बोला, देव का विचार बहुत ऊंचा है । यदि ऐसा हो जाय तो इस भूतलसे शोक संताप समाप्त हो जायेंगे । हम लोग आपके इसविचार के सर्वथा पोषक हैं ।

संघस्थविर ने प्रसन्न कंठ से कहा, वत्स तुम लोगों की यह सदाशयता ही तुम लोगों की उन्नति के मार्ग में सहायिका होगी । इसे मेरा आर्शीवाद समझें ।

कूटगुल्म नायक ने प्रसन्नता का अभिनय करते हुए कहा, देव का आर्शीवाद प्राप्त कर हम लोग अपने को कृतार्थ मानते हैं। फिर तनिक रुककर गंभीर बनकर बोला, भन्ते, आपनें थोड़ी देर पूर्व कहा है कि मेरी सहायता से सम्राट को सैनिक अभियान में भी सफलता मिलेगी, तो वह सहायता कैसी होगी ? संघस्थविर हंसकर बोला, क्या तुम समझते हो कि मैं केवल आर्शीवाद रूपी सहायता दूंगा ? देव, मैं मन्द बुद्धि हूँ। देव का अभिमत सम्राट से कहना है, इसलिए कुछ स्पष्ट निर्देश चाहता हूँ।

गंभीर स्वर से संघस्थविर नें कहा, मैं समझतां हूँ कि उसकी आवश्यकता नहीं होगी, फिर भी, तुम्हें कुछ संकेत देने में हानि नहीं है। सुनो, वैसी स्थिति आने पर मैं अपने गुप्तचरों के द्वारा तुम्हारे सम्राट को मागधी सेना को प्रत्येक गतिविधि से परिचित कराता रहूंगा। और मागधी सेना में हमारे जो विश्वस्त व्यक्ति है, वे उचित अवसर पर तुम्हारे सम्राट की विजय में सहयोग देंगे।

गुल्मनायक तो यही चाहता था। प्रसन्न स्वर से बोला, भन्ते अब मुझे विश्वास हो गया कि बौद्धधर्म को अवश्य पूर्व गौरव प्राप्त होगा। संघस्थविर ने उत्साह से कहा, जानते हो, मैं चाहता हूँ कि तुम लोगों के साथ मैं मगध को संघ वद्ध कर दूं, जिससे इन दो बड़ी शक्तियों का सहयोग प्राप्त कर बौद्धधर्म समस्त विश्व में व्याप्त हो जाय।

चतुर गुल्मनायक को यह भी अपने अनुकूल प्रतीत हुआ उसने सोचा कि संघबद्ध हो जाने पर यहाँ के विभिन्न मतावलम्बियों में फूट डालकर मगध पर अपना स्थायी शासन कायम किया जा सकेगा।

अतः प्रसन्न स्वर से बोला, यह बहुत सुन्दर बिचार है। इस अभिमत से मैं सम्राट को अवगत करा दूंगा।

तनिक रुककर संघस्थविर ने पूछा, तुम थके हो। विश्राम की व्यवस्था कर दूं ?

नहीं देव यहां अधिक रुकना निरापद नहीं होगा। आज्ञा दें।
और वह प्रणाम कर चला चया

: १२ :

चंद्रगुप्त के चले जाने के बाद ध्रुवस्वामिनी को विश्वास हो गया कि अब उसकी विरहवेला समाप्त हो गई। शीघ्र ही प्रिय सहवास सुख प्राप्त होगा। अत: उसका हृदय आनन्द से उच्छलित होने लगा।

थोड़ी देर पहले जहाँ यहाँ की चीज उसे काटने के लिए दौड़ती थी, सूनापन मालूम पड़ता था, वहीं अब न जाने कैसे हरचीज मधुर और आनन्द दायक प्रतीत होने लगी।

वस्तुत: संसार का सुखदुख मन की स्थित पर अवलम्बित होता है।

ध्रुवस्वामिनी उठी। वसन्त की बलखाती पल्लटी सी झमती हुई सारिका के समीम गई। उसे पिंजर से निकालकर अपने अंक में लेकर दुलराती हुई बोली, सखि सारिके, आज मैं बहुत खुश हूँ। कहो, तुम्हें क्या चाहिए ? जो मांगोगी नहीं दूँगी। बोलो।

सारिका बोली, तुम्हारा सुहाग अचल रहे।

ध्रुवस्वामिनी और पुलक उठी। पूछा तुम्हें क्या चाहिए ?

सारिका बोली, तुम्हारा वर आता है। वह तुम्हें प्यार करेगा।

यह सारिका प्रशिक्षित थी दासियों ने उसे यह कहने के लिए सिखलाया था। ध्रुवस्वामिनी के प्यार से प्रसन्न होकर वह इसी बात को कई बार दुहराने लगी।

ध्रुवस्वामिनी का गला भर आया। आंखों से आनन्दाश्रु छलक पड़े। सारिका को चूमकर बोली, सखि सारिके, सचमुच आज मेरा वर आता है। वह मुझे प्यार करेगा। सारिक मैं तुम्हें मोती की माला पहनकर तुम्हारा भी व्याह कर दूंगी।

इसी समय दासी ने आकर कहा, भट्टदारिके महाराज कुमार पधारे हैं।

ध्रुवस्वामिनी का रोंम रोंम सिहर गया। सारिका को पुन: चूंम कर उसे पिञ्चर में रख दिया। बढ़ी किन्तु ठिठक गई, क्योंकि उसे लज्जा गुदगुदाने लगी। परन्तु दर्शन के लिए आतुर नयनों ने प्रेरणा दी। पैर ब े।

चंद्रगुप्त कक्ष में मुट्ठी बांधे व्यग्रता से टहल रहा था। ध्रुवस्वामिनी को सामने देखकर उसके प्राण कंठ में आ गए। मुंह पीला हो गया। किन्तु अपने आवेगों को रोककर हृदय को पत्थर बना कर बोला राजकुमारी जी आपकी सेवा में एक प्रार्थना लेकर आया हूँ। स्वर की रूक्षता से चौंककर ध्रुवस्वामिनी ने चंद्रगुप्त के मुख की ओर देखा। और वहाँ जलती हुई ज्वालामुखी की लपट देखकर कांप गई। कहाँ वह विवाह की स्वीकृति की सूचना सुनने के लिए उत्सुक थी, और कहाँ उस जगह यह आकस्मिक कठोर कथन? क्षणभर के लिए वह विमूढ़ हो गई।

फिर चंद्रगुप्त ने पूछा, आज्ञा है? प्रार्थना निवेदन करूँ?

अपने को वश में कर ध्रुवस्वामिनी बोलीं, आसन ग्रहण कीजिए, क्या कोई नई बात है।

बैठकर चंद्रगुप्त ने आर्तकंठ से कहा, देवि मैं आपसे भीख मांगने आया हूँ।

ध्रुवस्वामिनी ने उत्तेजित स्वर से कहा, ऐसा क्यों कहते हैं ? आपके लिए मेरे पास क्या अदेय है ?

कहिए ।

कुछ रुक कर चंद्रगुप्त ने कहा, यों नहीं । प्रण करें कि आप जो कहेंगे, उसे मैं स्वीकार करूँगी ।

बिना कुछ विचार किए आवेश में ध्रुवस्वामिनी ने कहा, मैं ईश्वर की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि आप जो कहेंगे वह मुझे स्वीकार होगा

चन्द्रगुप्त की आँखों में आंसू आ गये । उसे पोंछ कर रुद्धकंठ से बोला, देवि, मेरी प्रार्थना है कि आप मगध का पट्टराजमहिषी पद स्वीकार करें ।

ध्रुवस्वामिनी को मालूम पड़ा कि कान में खौलता हुआ शीशा डाल दिया गया है । तिलमिला कर बोली, क्या आप मेरा उपहास करते हैं ?

व्याकुल कंठ से चन्द्रगुप्त ने कहा, नहीं देवि, मैं सत्य ही प्रार्थना करता हुँ ।

तो क्या आपने सम्राट पद स्वीकार कर लिया है ?

नहीं ।

तब ?

आप सम्राट रामगुप्त से विवाह कर लें ।

ध्रुवस्वामिनी को मालूम पड़ा कि किसी ने उसकी छाती में छुरी भोंक दी है । वह फफक कर रोने लगी ।

उसे कुछ भी पता नहीं चला कि इन कुछ घड़ियों में ही कौन सा परिवर्तन हो गया है कि उसकी चिर अभिलषित कामना पर इस प्रकार सहसा अनभ्रवज्र पात हो गया है । वह रोती रही ।

चन्द्रगुप्त और भी कठोर हो गया। अपने हृदय को वज्र बना कर उसने पुनः कहा देवि, विधि विधान को कोई टाल नहीं सकता है। शान्त रहिए। आपने प्रतिज्ञा की है। क्या मुझे भिक्षा मिलेगी ?

आँसू भरे नयनों से चन्द्रगुप्त को देखकर ध्रुवस्वामिनी बोली, अरे निर्दय, इस तरह की प्रतिज्ञा करा कर ऐसा कहते संकोच नहीं होता। प्राण माँगो प्रसन्नता से दे दूँगी। किन्तु ऐसा मत कहो।

चन्द्रगुप्त ने पुनः कठोर कंठ से कहा, कर्तव्य के आगे भावना को स्थान नहीं देना चाहिए। आप धैर्य धारण कर विचार करें।

कुछ रुक कर ध्रुवस्वामिनी ने पूछा, क्या सम्राट ने आपको इसीलिए बुलाया था ?

चन्द्रगुप्त ने रामगुप्त के साथ हुई पूरी बात बता कर कहा, मैंने भी बचन दे दिया है। उसे निभाना अब आपके हाथ में है।

ध्रुवस्वामिनी ने सिर नीचे कर लिया। किन्तु क्षण भर बाद जब उसने सिर उठाया, तो उसका रूप बदल गया था।

आँखें लाल हो गई थी, नथुने फड़कने लगे थे, होंठ काँपने लगे थे। उसने अपनी वेणी को हाथ में लपेट कर धीरे से झटका दिया। फिर मुट्ठी बाँध कर बोली, ठीक है। मैं भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूंगी। जाइए, कह दीजिए, मैं आपके अग्रज महोदय से विवाह कर लूंगी। किन्तु ध्रुवस्वामिनी के इस रूप को देखकर चन्द्रगुप्त डर गया। लेकिन किसी तरह अपने को प्रकृतिस्थ कर पूछा, देवि, किन्तु क्या ?

किन्तु यह कि आपके सम्राट को भी एक वचन देना होगा।

कैसा वचन ?

विवाह हो जाने के बाद कहूँगी। किन्तु अभी इतना कह देती हूँ कि वचन भंग होने पर मैं क्षत्रियाणी हूँ, विश्वास घात का बदला लेना जानती हूँ।

तो मैं जाकर कह दूँ ?

खुशी से

इसी समय वहाँ सहसा रामगुप्त आ गया। बोला, जाने की आवश्यकता नहीं है। मैं स्वयं सेवा में उपस्थित हूँ।

चन्द्रगुप्त उठ कर चुपचाप खड़ा हो गया।

कुछ आगे बढ़ कर ध्रुवस्वामिनी बोली, सेविका ध्रुवस्वामिनी भारत के परम प्रतापी सम्राट को प्रणाम करती है।

विशेषण से प्रसन्न होकर रामगुप्त ने पूछा, मेरी प्रार्थना के सम्बन्ध में राजकुमारी जी का आदेश क्या है ?

चन्द्रगुप्त पर वक्र द्रष्टि डाल कर ध्रुवस्वामिनी बोली, सम्राट के आदेश को मैं अपना सौभाग्य मानती हूं। कौन मूर्खा होगी जो युवराज पत्नी बनने की अपेक्षा पट्टराजमहिषी बनना न चाहेगी ?

रामगुप्त को इस परिवर्तन पर आश्चर्य हुआ उसका हृदय आनन्द से भर उठा। पूछा, किन्तु मैंने जो सुनाया............?

झट से ध्रुवस्वामिनी बोली, उस समय वह भी सत्य था। किन्तु निम्ब रस पान करने वाले काक को यदि अनायास रसाल रस मिल जाय तो क्या वह निम्ब रस को छोड़ न देगा ?

और उसने चन्द्रगुप्त पर तीव्र दृष्टि डाली।

ध्रुवस्वामिनी के कंठ की काकु से चन्द्रगुप्त का हृदय कांप गया। उसे मालूम पड़ा कि भयानक नागिन मूषक शावक को निगलने के पहले उससे क्रीड़ा कर रही है।

किन्तु मढ़ रामगुप्त इस प्रशंसा से विमोहित हो कर बोला, तो मैं इसकी राजकीय घोषणा कर दूं ?

ध्रुवस्वामिनी बोली, किन्तु मेरा भी एक निवेदन है।

क्या है ?

मैं एक वचन मांगती हुँ। उसके लिए आपको भी प्रतिज्ञा करनी होगी।

आनन्द के आवेग से उच्छलित हृदय वाला रामगुप्त बोला, राजकुमारी जी, एक नहीं, सौ वचन मांगिए।

कहिए।

तनिक रुक कर कठोर कंठ से ध्रुवस्वामिनी ने कहा, ईश्वर की सौगन्ध खाकर कहिए कि मैं जो माँगूगीं, उसे आप दीजिएगा।

नारी की रूपमाया से विमोहित रामगुप्त ने पूछा भी नहीं कि क्या माँगती हो। बोला, मैं ईश्वर की सौगन्ध ले कर कहता हूँ कि आप जो माँगेगीं उसे दूँगा।

अब वहाँ चन्द्रगुप्त से रुका नहीं गया।

चुप चाप चला गया।

किन्तु उसके जाते ही ध्रुवस्वामिनी फफक कर रोने लगी।

रामगुप्त ने पूछा, क्यों रोती हैं ?

कुछ नहीं।

वह वचन क्या है ?

विवाह की घोषणा कीजिए। बाद में कहूँगी।

जाऊँ ?

जाइए।

यह अब एकान्त चाहती है, यह सोच कर प्रसन्न मन रामगुप्त लौट पड़ा।

किन्तु उसके जाते ही, ध्रुवस्वामिनी भूमि पर गिर पड़ी। बेहोश हो गई।

)——(

: १३ :

शक सम्राट रुद्रसिंह अपने कक्ष में बैठा था। उसके सामने स्वर्ण चषक में आसव लिए सुन्दरी सेविका खड़ी थी। यह सेविका पारसीक देश की थी। बाल्यावस्था में ही पारसीक व्यापारी से सहस्र स्वर्ण कर्ष में खरीदी गई थी। इतना अधिक मूल्य इसके उच्च कुल के कारण दिया गया था। व्यापारी ने बतलाया था कि यह पारसीक सामन्त की अपहृता कन्या है।

वस्तुत: उसमें आभिजात्य कुल की कुछ लक्षण थे। गौरवर्ण बड़ी-बड़ी आँखें घुंघराले केश पतले होंठ इस प्रकार उसने अपने वंश के उत्तराधिकार में उत्तम सौंदर्य पाया था। अत: शक राजनगरी में चतुर राजकीय शिक्षकाओं के द्वारा उसे बाल्यकाल से ही उचित शिक्षा दी गई थी। साथ ही उस स्वास्थ्य और सौंदर्य की वृद्धि पर भी ध्यान रखा गया था। फलत: किशोरावस्था को पार करने के बाद वह कुशल कलावती सुन्दरी बन गई थी।

आजकल सम्राट रुद्रसिंह की वही प्रधान सेविका थी। रुद्रसिंह उससे सन्तुष्ट भी था। फिर भी रुद्रसिंह के मन से ध्रुवस्वामिनी का मोह समाप्त नहीं होता था। मन बड़ा रहस्यमय है। वह उत्तम से उत्तम उपभुक्त वस्तु से थोड़े दिनों में ही विरक्त हो जाता है। यही कारण है कि स्वकीया पत्नी के परम सुन्दरी होने पर भी कालान्तर में पुरुष को उससे प्रारम्भिक स्पर्श जन्य आनन्द नहीं आता है। अत: उससे न्यून रूप गुणवाली परकीया को प्राप्त करने के लिए वह सचेष्ट

हो जाता है। सचमुच उस परकीया से उसे आनन्द भी मिलता है। उङली छू जाने पर भी रोमाञ्च हो जाता है। यह बात केवल पुरुषों के लिए ही नहीं, स्त्रियों के लिए भी है। विष्णुगुप्त का यह कथन सत्य है कि गायें जैसे नई नई घास खोजती है उसी प्रकार नारी भी नया-नया नर खोजती हैं।

मनुने इस तथ्य को पहचान कर ही कहा है कि बेटी और और बहन के साथ भी एक आसन पर नहीं बैठना चाहिए, क्योंकि, बलवान इन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति। भारतीय मनीषियों को मनको रहस्य का पूर्ण ज्ञान था, इसीलिए उन लोगों ने सावधान किया है कि वासना उपभोग से शांत नहीं है। बल्कि जैसे आग में घी डालने आग बढ़ती जाती है, उसी प्रकार उपभोग से वासना और प्रबल होती जाती है। एक ही मार्ग है कि मनुष्य संयम धारण करे, उसी से शांति मिल सकती है।

इस भारतीय विचारधारा को रुद्रसिंह नहीं मानता था फलतः सुर और सुन्दरी में डूबे रहने पर भी उसे तृप्ति नहीं थी। वह ध्रुवस्वामिनी के लिए व्याकुल रहता था।

सेविका ने विनम्र स्वर से कहा, देवपुत्र आसव पान करने की कृपा करें। शान्ति मिट जायगी। सेविका की ओर देखकर रूखी मुस्कराहट के साथ रुद्रसिंह बोला, यह शांति तो मिटने वाली नहीं है। फिर भी, तुम्हारी इच्छा है तो पिला दो।

सेविका ने अंगड़ाई सी ली, जिससे उसका लंहगा नीचे झिसककर गिर पड़ा। मात्र लघुअन्तः वस्त्र कटिभाग पर रह गया। यों प्रायः नग्न सी होकर, उसने रुद्रसिंह के होठों से आसव पूर्ण चषक को सटा दिया।

एक घूंट आसव लेकर रुद्रसिंह ने सेविका को अंक में खींच लिया।

मदविह्वल होकर सेविका ने उसकी ग्रीवा को अपने वाम मृणाल बाहु से बाँध लिया।

किन्तु तत्क्षण विरक्त सा होकर रुद्रसिंह ने उसे अंक से अलगकर दिया। सुन्दरी सेविका हत प्रभ हो गई। कुछ रुककर बोली, देवपुत्र की खिन्नता को मिटाने के लिए क्या संगीत का आयोजन करूँ?

उद्विग्न स्वर से रुद्रसिंह बोला, नहीं अब मैं विश्राम करना चाहता हूँ। तुम जा सकती हो। सेविका को रुलाई आ गई। किन्तु उसे बलात रोककर वह वस्त्र पहने लगी। इसी समय द्वार से द्वार पालिका ने कहा, शहानुशाह देव पुत्र मगध से लौटे हुए गुल्मनायक दर्शन करना चाहते हैं।

रुद्रसिंह उत्सुक स्वर से बोला, शीघ्र भेजो।

फिर सेविका की ओर घूमकर बोला, तुम जाकर विश्राम करो। मुझे उससे एकांत में बात करनी है।

सेविका चली गई।

कुछ क्षण बाद गुल्मनायक आया। उसने झुककर रुद्रसिंह का अभिवाद किया।

उसे बैठने का संकेत कर रुद्रसिंह ने पूछा, कहो, उस बूढ़े बौद्धभिक्षु से भेंट हुई?

हां देवपुत्र, भेंट हुई, और अनुकूल वार्तालाप भी हुआ।

कहो क्या बात हुई?

संक्षेप में वार्तालाप का सारांश कहकर गुल्मनायक, बोला, देवपुत्र वह बौद्धभिक्षु पूरा धर्मान्ध व्यक्ति है। धर्म के नाम पर वह सब कुछ कर सकता है। उससे हम लोगों को पूरी सहायता मिलेगी।

हाँ, यह तो ठीक है। बौद्धधर्म के प्रचार के लिए ही हम लोग मगध पर अधिकार चाहते हैं इसी बात को उसके सामने दुहराते रहना

है । साथ ही उसे आर्थिक साहाम्य भी देते रहना होगा । मगध ऐसे सुसंगठित तथा शक्ति शाली राज्यको पराभूत करने के लिए हम लोगों को विशेष कूटनीति का प्रयोग करना पड़ेगा ।

गुल्मनायक बोला, देवपुत्र का विचार सर्वथा संगत है । कूटनीति के प्रयोग के बिना केवल शस्त्र बल से उसे जीतना असम्भव है ।

कुछ सोचकर रुद्रसिंह बोला, किसी भी मूल्य पर मैं ध्रुवस्वामिनी को अपने वश में करना चाहता हूँ । चन्द्रगुप्त ने उसके सामने मेरा बहुत बड़ा अपमान किया है । उसका प्रतिशोध लिए विना मुझे शाँति नहीं मिलेगी ।

कुछ स्मरण कर गुल्मनायक बोला, मुझे मगध में सूचना मिली है कि रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी से स्वयं विवाह कर रहा है ।

रुद्रसिंह चौंकर बोला, यह तो बहुत अच्छा समाचार है ।

हाँ देवपुत्र । मैंने भी सोचा है कि अब रामगुप्त और चंद्रगुप्त में विरोध पैदा करना सरल हो जायगा ।

रुद्रसिंह उत्तेजित स्वर से बोला , केवल विरोध पैदा कराना ही नहीं चन्द्रगुप्त की हत्या करानी होगी । क्योंकि उसके जीवित रहते मगध पर विजय प्राप्त करना सरल नहीं होगा । साथ ही ध्रुवस्वामिनी के हृदय को भी वशीभूत करना कठिन होगा ।

गुल्मनायक ने चिन्तित स्वर में पूछा, किन्तु राज महल के भीतर हत्या कैसे होगी ?

हंसकर रुद्र सिंह बोला, हत्या के लिए तुम्हें अपने आदमियों को नहीं भेजना होगा । ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करनी होगी कि रामगुप्त खुद हत्या करा दे ।

गुल्मनायक की दृष्टि उधर नहीं थी । अब इसे सम्भव समझ कर प्रसन्न स्वर से बोला, देवपुत्र की दूरदर्शिनी दृष्टि मर्म पर पड़ी है उस विक्षिप्त बौद्ध से इस कार्य में भी पूरी सहायतामिलेगी ।

हाँ, प्रधान रूप से उसी के द्वारा यह कार्य कराना चाहिए। फिर तनिक रुककर बोला, यद्यपि तुम थके हो फिर भी कार्य की महत्ता को देखते हुए तुम्हारा ही पुनः पाटलिपुत्र जाना आवश्यक प्रतीत होता है।

आज्ञा शिरोधार्य है।

तुम्हें उचित पुरस्कार मिलेगा।

केवल देव की कृपा चाहिए।

अच्छा अब जाकर विश्राम करो। कल प्रातः मिलना।

गुल्मनायक अभिवादन कर चला गया।

ध्रुवस्वामिनी ने विवाह करना स्वीकार कर लिया है; इतने से ही रामगुप्त इतना मुग्ध हो उठा कि उसने और किसी बात पर ध्यान नहीं दिया। शीघ्रता में विवाह की घोषणा हुई। विवाह हुआ, और, ध्रुव-स्वामिनी को पट्ट राज महिषी पद पर अभिषिक्त कर दिया गया।

आज सुहाग राति थी। सुबह से ही राजद्वार पर शहनाई बज रही थी। चारो ओर उल्लास का वातावरण था ।

रामगुप्त के हृदय में आनन्द की धारा बह रही थी। उसका रोम-रोम वासना की आग से जल रहा था क्षण भर का विलम्ब भी उसे असह्य होता था।

यद्यपि रामगुप्त की प्रथम पत्नी का स्वर्गवास हो गया था, फिर भी उसने अपने पूर्ण नारी सुख पाया था। इसके अतिरिक्त, उसे कभी भी सुन्दरियों की कमी नहीं रही। उसका नर्म सचिव उसके लिए प्रतिदिन उत्तमोत्तम रमणियों का प्रबन्ध कर देता था। तथापि न जाने ध्रुवस्वा-मिनी में कौन सा आकर्षण था कि रामगुप्त आज नव विवाहित नव युवक की तरह उत्कंठित हो उठा था।

समय बीता। सेविका ने नव वधू के कक्ष में चलने के लिए राम-गुप्त से प्रार्थना की।

रामगुप्त का शरीर रोमान्चित हो उठा। कपोल स्वेद सिन्क हो गये। हृदय की धड़कन बढ़ गई। काँपते पैरों से वह चला। सेविका

आगे थी। नव वधू के कक्ष के द्वार पर जाकर मार्ग छोड़ कर वह रुक गई।

रामगुप्त धीरे से भीतर गया।

ध्रुवस्वामिनी बैठी थी। उसने कोई नया शृंगार नहीं किया था। रोज जैसी ही थी। उसने उठकर रामगुप्त स्वागत करते हुए कहा, आइए, आसन ग्रहण कीजिए।

रामगुप्त को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने समझा था कि ध्रुवस्वा-मिनी लज्जा से घूंघट काढ़े रहेगी। बोलेगी नहीं। किन्तु इसे यों विप-रीत आचरण करते देख कर वह तत्बुद्धि हो गया। चुप चाप पलंग पर बैठ गया। लेकिन जैसे ही ध्रुवस्वामिनी के अलंकार हीन शरीर की ओर उसका ध्यान गया, वह चौंक उठा। घबड़ा कर पूछा, आपने अलं-कारों को धारण क्यों नहीं किया है ?

हँसकर ध्रुवस्वामिनी बोली, क्या मैं अलंकार के विना अच्छी नहीं लगती हूँ ?

यह बात नहीं। यों भी आपका सौन्दर्य अपूर्व है।

फिरभी अलंकार से वह और द्विगुणित हो जाता।

मुस्कराकर ध्रुवस्वामिनी बोली, मैं कृत्रिमता को पसंद नहीं करती हूँ।

तनिक रुक कर रामगुप्त बोला, अच्छा, आइए, बैठिए।

ध्रुवस्वामिनी निस्संकोच आकर पलंग के एक सिरे पर बैठ गई।

रामगुप्त को आज तक ऐसी निर्लज्जा युवती नहीं मिली थी।

अतः उसके इस ब्यवहार को उसने कामावेश मान लिया। पूछा, आपको मगध कैसा मालूम पड़ता है ?

सुन्दर।

और मैं ?

ध्रुवस्वामिनी खिलखिला कर हंस पड़ी। बोली, अब यह पूछ कर क्या कीजिएगा ?

इच्छा है।

छोड़िए, अब मुझे नींद आती है।

रामगुप्त ने इसे स्पष्ट आमन्त्रण समझा।

अत: कुछ आगे खिसककर ध्रुवस्वामिनी का हाथ पकड़ते हुए बोला, तो आइए, सो जाइए। हाथ छुड़ाकर ध्रुवस्वामिनी बोली, उस दिन वाली प्रतिज्ञा आपको याद है ?

हाँ, क्यों नहीं ?

तो उसे पूर्ण करने के बाद ही आप मेरे साथ पति जैसा व्यवहार कर सकते हैं।

उत्कंठा से रामगुप्त ने कहा, माँगो, सब कुछ तो तुम्हारा ही है। क्या चाहिए ?

कहीं आप अस्वीकार कर दें तब ?

विश्वास करो।

तो सुनिए। शक सम्राट रुद्रसिंह ने मेरा अपमान किया है। अत: मैंने प्रतिज्ञा की है कि जो उसका सिर काट कर मेरे सामने लायेगा। मैं उसी के चरणों में अपनी देह सौंपूंगी।

अत: आप पहले इस प्रतिज्ञा को पूरा कर दें, रामगुप्त को मालूम पड़ा कि उसके गले में नागिन साँप लिपट गयी है। वह तिलमिला उठा। उसे अब ध्रुवस्वामिनी के व्यवहार का रहस्य समझ पड़ा।

उसे क्रोध आ गया। बोला, इस तरह की विचित्र बात को पहले ही क्यों नहीं कहा था ?

उस समय मैंने स्पष्ट कहा था कि विवाह के माँगूँगी । आपको संदेह होता तो विवाह न करते।

सचमुच रामगुप्त को अब पश्चाताप होने लगा किन्तु अब तो पीछे का रास्ता बन्द हो गया था। अतः चालाकी से काम लेने के विचार से रामगुप्त ने कहा, ठीक है। कल से ही मैं उसकी व्यवस्था करूंगा।

जल्द ही उस पर आक्रमण कर तुम्हारीं सेवा में उसका सिर ला दूँगा। किन्तु इस शुभ समय में मुझे दुःख मत दो।

कठोर स्वर से ध्रुवस्वामिनी बोली, नहीं मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकती हूँ।

रामगुप्त वासना से उत्तेजित था। यह वे लगन की शहनाई उसे अच्छी नहीं लगी। "कामान्धो नैव पश्यति" के अनुसार वह अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर नहीं रह सका। झपट कर उसने ध्रुवस्वामिनी को अपने अंक में खींच लिया।

किन्तु पल भर का बिलम्ब किए विना ध्रुवस्वामिनी मछली सी फिसल कर अलग हो गई। और कुछ दूर हट कर उसने अपनी कञ्चुकी के भीतर से चमकती छुरिका निकाल ली। और पैंतरा बदल कर आक्रमण करने की स्थिति में छुरिका तानकर खड़ी हो गई। उसकी आँखों से आग बरसने लगी। नासिका रन्ध्र से नागिन की तरह फुफकार निकलने लगी।

रामगुप्त आवेश में आगे बढ़ा किन्तु फुफकारती सर्पिणी को छुरिका रूपी जिह्वा लपलपाते देखकर वह कांप उठा। उसके पैर धरती में सट से गए। भर्राई आवाज में बोला, यह क्या करती हो।

ध्रुवस्वामिनी शुष्क कंठ से बोली, आप ऐसे व्यक्ति के लिए जो उचित है वही करती हूँ। अच्छा हुआ कि आपने आज ही अपना सच्चा स्वरूप प्रकट कर दिया। लेकिन सुन लीजिए मैं क्षत्रियाणी हूँ।

मरना और मारना दोनों जानती हूँ। सो शर्त के उलटा चलने पर जो होगी, उसका उत्तर दायित्व आप पर होगा।

रामगुप्त कायर था। ध्रुवस्वामिनी के इस उद्दीप्त रूप को देखकर उसका साहस समाप्त हो गया। अच्छा देखूंगा कहकर चुपचाप लौट पड़ा।

उसके जाते ही ध्रुवस्वामिनी ने कक्ष के कपाट बन्द कर लिए। और छुरिका फ़ेंककर धरती पर लोटकर फफकर रोने लगी।

कुछ देर बाद झटके से उठी, और, दीवार पर टंगे हुए देवी के चित्र सामने जाकर घुटने टेककर बैठ गई। और हाथ जोड़कर बोली, देवि, तुम्हारी मूर्ति के सामने मैंने जिसका वरण किया है, उसी को यह शरीर सौंपूंगी।

यदि यह नहीं हो सका तो मैं प्रण करती हूं कि तुम्हारे चरणों में अपना वलिदान कर दूंगी। देवि, मुझे शक्ति दो, यह कहकर उसने माथा टेक दिया।

और फिर फफक कर रोने लगी।

: १५ :

चन्द्रगुप्त का मन अत्यन्त अशान्त था। ध्रुवस्वामिनी के बिछुड़ जाने का दुख किसी तरह कम नहीं हो रहा था। वह स्वाभवतः चरित्रवान् व्यक्ति था, फिर भी न जाने कैसे उसका ध्रुवस्वामिनीं से प्रेम हो गया, और, वह प्रगाढ़तर होता गया।

आज से पांच वर्ष पहले ही समावर्तन समारोह के बाद "कुवेरनाग" नामक एक सुन्दरी राजकुमारी से उसका विवाह हो चुका था। वह उससे सन्तुष्ट और प्रसन्न भी था।

अन्य सामान्य राजकुमारों की तरह उसका मन कभी भी पारदारिक प्रलोभन में फंसा नही था। और यही कारण था कि ध्रुवस्वामिनी से प्रेम हो जाने पर भी उसने शारीरिक संपर्क की चेष्टा नहीं की थी। उसका विचार था कि विवाह के बाद ही वह मधुर सुख प्राप्त करूँगा।

किन्तु हायरे दुदर्व तुमने उसकी कामना कली को बड़ी निर्दयता से कुचल दिया।

अतः इस समय चंद्रगुप्त इस वज्राघात की वेदना को सहने के लिए अपनी समस्त शक्ति का उपयोग कर रहा था।

नवो ा रात अपने केशों को खोलकर उन्हें जल्द घट स जल गिरा कर धो रही थी। बालक चंचल पवन उसे तंग कर रहा था। श्रावण का महीना था। कृष्ण द्वितीय तिथि थी। चंद्रगुप्त चुपचाप आकाश की

ओर देखता हुआ बैठा था। इसी समय प्रतिहारी ने आकर सूचना दी देव की सेवा में कवि कालिदास उपस्थिति होना चाहते हैं।

कालिदास का नाम सुनकर चन्द्रगुप्त चौंक उठा। प्रसन्न कंठ से बोला, हाँ हाँ उन्हें शीघ्र मार्ग दिखलाओ।

कुछ क्षणों में ही अप्रतिम प्रतिभाशाली कविकालिदास पहुंचे।

चुन्द्रगुप्त उठकर खड़ा हो गया। कुछ आगे जाकर अभिवादन पुलकित स्वर से बोला मेरा धन्य भाग कि कवि ने अपनी चरणधूलि से मेरे आवास को पवित्र किया। आसन ग्रहण कर।

आर्शीवाद देनें के उपरांत बैठकर कविने पूछा, मित्र, मुख पर खिन्नता दृष्टि गोचर होती है। क्या मैं कुसमय में आया हूं? मुस्करा-कर चन्द्रगुप्त ने कहा, कवि की अन्तर्भेदिनी दृष्टि से क्या छिपा रह सकता है? फिर भी इसे कुसमय न कहें। इस समय मुझे सर्वाधिक आपको ही अवश्वकता थी किन्तु एक बात पूछूं?

वचनामृत के लिए श्रुतिपुट आकुल हैं बिलम्ब कर उन्हें वेदना न दें।

क्या आप मुझ पर रुष्ट हैं?

यह अवर्थकारी प्रश्न कैसे उत्पन्न हो गया?

आपने शीघ्र आने का वचन दिया था फिर उसे भूल कैसे गए?

तनिक सा हंसकर कालिदास ने कहा, मित्र इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

मुस्कराकर चंद्रगुप्त ने पूछा, क्या माननीय भाभी जी ने रोक लिया?

नहीं मित्र अकेले मैं अपराधी हूं। फिर तनिक रुककर उन्होंने कहा, आपको स्मरण होगा कि मैंने एक काव्य प्रणयन की इच्छा व्यक्त की थी।

चंद्रगुप्त ने कहा, हाँ हाँ, पूरा स्मरण है। आपने कहा था कि जिस समय आपका माननीया भाभी जी से वियोग हुआ था उसी समय आपके मन में उस काव्य की रूपरेखा उत्पन्न हो गयी थी।

मुस्कराकर कालिदास ने कहा, आपकी स्मरण शक्ति पर मुझे ईर्ष्या होती है। ठीक वही बात है। हाँ तो उसे पूर्ण करने पूर्व मुझे देशाटन करने की आवश्यकता का अनुभव हुआ। सो, मैं उसी के निमित्त चला गया था।

कहाँ तक ?

कैलास तक ?

ओह, तब तो आपने बड़ी कठिन यात्रा की है।

बड़ा आनन्द आया है। जीवन सफल हो गया है।

लेकिन ··· ··· ?

हाँ, कष्ट भी कम नहीं हुआ। किन्तु काटों में ही फ़ूल उगते हैं। पंक में ही पंकज उत्पन्न होते हैं।

कुछ रुककर चंद्रगुप्त ने पूछा, काव्य तैयार हो गया ?

हाँ।

क्या नाम है ?

मेघदूत।

नाम तो अपूर्व है।

संभवत: वह काव्य भी अपूर्व है।

अवश्य होगा। आप ऐसे विलक्षण प्रतिभाधनी के द्वारा इतने परिश्रम से लिखा गया काव्य अपूर्व होगा, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। सुनने की आतुरता मुझे विवेक हीन बना रही है। किन्तु मैं उसे रोकूंगा। विश्राम के बाद।

नहीं नहीं। मैं यहाँ मध्याँह काल में ही आ गया था। अमरसिंह के यहाँ रुका था। वहाँ पर बहुत कुछ सुन चुका हूं। अत: ······।

दीर्घ विश्वास लेकर चन्द्रगुप्त ने कहा, हां मित्र मेरे साथ दैव ने बड़ी निर्दयता की है। मेरी वाणी वेदना को अभिव्यक्ति करने में असमर्थ है। खैर तो आप अपने काव्य को सुनाइए।

कालिदास ने "मेघदूत" को सुनाना शुरू किया। कालिदास का स्वर वहुत मधुर था। पढ़ने की शैली विलक्षण थी। ो उस समय मालूम पड़ा कि कालिदास के कंठ से सुधा धारा प्रवाहित हो रही है।

चन्द्र गुप्त उसी में डूब गया।

धीरे धीरे पूर्व मेघ समाप्त हुआ। उत्तर मेघ प्रारम्भ हुआ। चन्द्रगुप्त को प्रतीत हुआ कि उनके अपने हृदय के भाव ही कवि शब्द के रूप में मूर्त होकर उपस्थित हो रहे हैं। अत: वह रसवोध की उच्च तम पृष्ठ भूमि में तन्मय हो गया।

तनिक रुककर चंद्रगुप्त पर दृष्टि डालकर कालिदास ने पढ़ा —

तन्वी श्यामा शिखरि दशना पक्वबिम्बा धरोष्ठी,
मध्ये श्यामा चकित हरिणी प्रेक्षण निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रास्तनाभ्याम्,
या तत्रस्यात् युवतिविषये सृष्टि राद्येव धातुः।

कृशाँगी सुन्दर दन्तपंक्ति वाली पके विम्बाफल के समान लालहोंठ वाली, पतली कमर वाली, चकित हरिणी के समान सुन्दर बड़ी आंख वाली गहरी नाभि वालीं नितम्बभार से धीरे धीरे चलनें वाली तथा स्तन भार से कुछ झुकीं हुई। सुन्दरी युवती होगी, जो युवतियों की सृष्टि के समय मानों ब्रह्मा की सबसे पहली रचना के समान मालूम पड़ेगी।

इसे सुनकर चंद्रगुप्त ने उठकर कालिदास का आलिङ्गन कर लिया, बोला, ओह, मित्र आपने तो स्पष्ट चित्र उपस्थित कर दिया है, आगे पढ़िए।

फिर कालिदास ने पढ़ना शुरु किया। किन्तु कुछ श्लोकों के बाद कालिदास ने जब पढ़ा—

शेषान् माषान् विरह दिवस स्थापितस्यावधेर्वा,
विन्यस्यन्ती भुविगणनया देहली दत्त पुष्पैः
मत्संगं वा हृदय निहितारम्भ मास्वादयन्ती
प्रायेणैते रमण विरहेष्वङ्गनानाम् विनोदाः ।

यक्ष कहता है कि वह मेरी प्रिया प्रतिदिन वियोग दिनों को गिनने के लिए घर की देहली पर फूलों को रखती जाती होगी जब तुम जाओगे तो वह उन्हीं फूलों को धरती पर रख कर गिननें में व्यस्त होगी। अथवा आँख मूंद कर मन में काल्पनिक रूप से मेरे सहवास सुख का अस्वादन लेती होगी प्रायः प्रिय विरह काल मैं रमणियों के कालयापन के ये ही साधन होते हैं।

तब चँद्रगुप्त कीं आँखों से आँसू छलक पड़े। उसने किसी तरह अपनी रुलाई को रोका।

कलिदास पढ़ते रहे।

किंतु कुछ देर बाद जब कालिदास न पढ़ा,

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया।
मात्मानं ते चरण पतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्त्रैस्तावन् मुहुरुपचितैः दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः॥

तो चंद्रगुप्त अपनी रुलाई नहीं रोक सका। फफक कर रोने लगा। कालिदास तनिक रुके। चंद्रगुप्त को देखा। फिर अपनी सफलता पर प्रसन्न होकर गदगद कंठ से पढ़ने लगे।

अन्त में काव्य समाप्त हुआ।

कुछ देर तक आँख मूंद कर बैठे रहने के बाद चंद्रगुप्त चुपचाप उठा और मञ्जूषा के निकट जाकर उससे अपनी बहुमूल्य मणिमाला निकाल

ली। फिर शान्ति पैरों से लौट कर उसे कालिदास के कंठ में पहनाकर बोला, कविवर, इस दिव्य काव्य को सुना कर आपने जो आनन्द दिया है, उसका मूल्य मैं नहीं दे सकता हूं। फिर भी उसके मूल्य के रूप में अपने आपको आपके चरणों में सौंपता हूँ। स्वीकार करें।

कालिदास भी उठकर खड़े हो गए। उनकी आँखोंसे भी अश्रुधारा बहने लगी। गदगद कंठ से बोले मित्र, आप जैसा गुणवान तथा गुणज्ञ आज इस भूतल में और कोई नहीं है। आपकी कृपा ही मेरे लिए सब कुछ है। आपने इसे पसंद किया बस इसी से मेरा परिश्रम सफल हो गया।

तनिक, रुककर चन्द्रगुप्त ने कहा, आपको एक बचन देना होगा।

आज्ञा हो।

अपने दर्शन से आपको मुझे प्रतिदिन कृतार्थ करना होगा।

किन्तु ... ...।

मैं कुछ नहीं सुनूँगा। आपके लिए पहले से ही मैंने अपना उद्यान प्रासाद सुरक्षित कर दिया है। उसी में निवास करें।

कुछ रुककर कालिदास ने धीरे से कहा, इस कृपा के लिए मैं आजन्म कृतज्ञ रहूंगा। किन्तु अभी थोड़े दिनों के लिए मुझे अवकाश देने की कृपा करें।

कब तव ?

चार महीनों के लिए।

ठीक है। किन्तु अभी दो चार दिनों तक रुकना होगा।

आज्ञा शिरोधार्य है।

हँसकर चंद्रगुप्त ने कहा, अच्छा तो अब आज विश्राम करें। मैं कल प्रातः स्वयं सेवा में उपस्थित होऊंगा।

और उसने प्रतिहारी को बुलाकर उद्यानभवन में पहुंचा देने का आदेश दे दिया।

कालिदास के जाते ही वीरभद्र आया।

चंद्रगुप्त ने पूछा, वीरभद्र कोई नया समाचार है ?

देव, बहुत चिन्ताजनक समाचार है।

क्या ?

शकों ने यहां तक हाथ पैर फैला दिए हैं। चौंककर चंद्रगुप्त ने पूछा, यहाँ उनका आश्रम कौन है ?

धर्मान्ध बौद्धों को छोड़कर और कौन होगा।

क्या यहां के बौद्ध भी ... ... ?

हाँ, देव धर्मान्धता ऐसी बुरी चीज और कोई नहीं है। यहाँ के संघस्थविर का ही सहयोग प्राप्त करने में उन्हें सफलता मिल गई है।

आश्चर्य से चन्द्रगुप्त ने कहा, क्या ऐसा भी संभव है ? क्या संघ-स्थविर ऐसे मान्य मनीषी भी क्षुद्र राजनीति में पड़ सकते हैं।

कुछ कठोर कंठ से वीरभद्र बोला, देव, उनकी विद्वत्ता तथा धर्म निष्ठादि में कोई संदेह नहीं है। फिर भी बौद्ध धर्म को राजधर्म बनाने के मोह में उनकी बुद्धि भ्रांति हो गई है। चंद्रगुप्त ने चिंतित स्वर से कहा, मैं भगवान बुद्धि के उपदेशों को आदर की दृष्टि से देखता हूँ। साथ ही यह भी मानता हूँ कि मनुष्यों के मन में हिंसा वृत्ति को निकालकर उसे प्रेम पूर्ण करने में वे उपदेश महत्व पूर्ण उपयोगी हैं। परन्तु धर्म हृदय की वस्तु है। भाव प्रधान है। उस पर राजकीय प्रतिबन्ध की क्या आवश्यकता है ? जिसे जो रुचे, वही धर्म माने। हमारा मगध शासन प्रत्येक धर्म को समान दृष्टि से देखता है फिर उसका विरोध क्यों ?

रूखी हँसी हंसकर वीरभद्र बोला, जो मोहान्ध होते हैं, उनके लिए इस प्रकार के तटस्थ विचार अरुचिकर होते हैं।

विचार पूर्ण स्वर से चंद्रगुप्त ने कहा, तुम ठीक कहते हो। खैर अब क्या सोचते हो ?

संघस्थविर को बन्दी बना लिया जाय।

नहीं नहीं, यह तो बड़ी भूल होगी। इससे बौद्धधर्मावलम्बी और रुष्ट हो जायेंगे। यहाँ हमें भेदनीति से काम लेना चाहिए। मैं समझता हूँ। कि अधिकांश बौद्ध इससे भिन्न विचार के हैं। देशाभिमानी हैं। मैं कोष कार अमर सिंह से बात करूँगा। और इस दिशा में उनसे सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करूँगा। लेकिन तुम्हारे ऊपर एक दूसरा भार देना चाहता हूँ।

आदेश पालन करने में मुझे प्रसन्नता होगी। चंद्रगुप्त ने धीरे धीरे उससे कुछ कह कर कहा, यह अत्यंत गुप्त रूप में होना चाहिए। प्रसन्न स्वर से वीरभद्र बोला, देव वैसा ही होगा। अच्छा अब जाओ कल मिलूंगा।

और चन्द्रगुप्त उठ गया।

ध्रुवस्वामिनी से तिरस्कृत होने पर रामगुप्त का पारदारिक रस विलास और भी वेगवान हो गया। उसका नर्म सचिव सामदामादि विविध उपायों का उपयोग कर प्रतिरात्रि के लिए नई - नई सुन्दरियों का प्रबन्ध करने लगा।

इस बात का पता संघस्थविर को भी लग चुका था, अतः उसने जान बूझ कर नर्म सचिव को बुला कर, मन्दाकिनी से उसका परिचय करा दिया। मन्दाकिनी रूप गुण से नर्मसचिव बहुत प्रभावित हुआ। उसने रामगुप्त से भी इसकी चर्चा की। और, रामगुप्त के आदेश से मन्दाकिनी को राजमहल में जानें के प्रयास में लग गया।

संघस्थविर ने उससे कहा था कि यह पंचनद की राजकुमारी है। बौद्ध धर्म के प्रति नैसर्गिक अभिरुचि होनें के कारण मेरे यहां धर्मचर्चा के लिए आई है। यह भिक्षुणी बन जाना चाहती है, किंतु मैंनें ही रोक दिया है।

अतः संघस्थविर के कथनानुसार मन्दाकिनी को वास्तविक राज-कुमारी समझकर नर्म सचिव करते हुए उसे वश में करनें का प्रयत्न कर रहा था। उसे भय था कि यह धर्मप्रिय होने के कारण शीघ्र वश में नहीं होगी।

साथ ही इस पर बल प्रयोग भी नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह बात परराष्ट्र विषयक समस्या बन जायगी। अतः वह पन्द्रह दिनों तक बड़ी सावधानी से वात्स्यायन के कामसूत्रानुसार पारदारिक प्रयोग करता रहा।

मन्दाकिनी तो तैयार थी ही, किन्तु कामकला की दृष्टि से उसनें भी विलम्ब किया था अन्त में सोलहवें दिन रामगुप्त से धर्मचर्चा के नाम पर वह राजप्रासाद में जाने के लिए तैयार हुई थी।

सो आज सन्ध्या समय मिलने की बात तय थी। नर्मसचिव रथ लेकर गया हुआ था। रामगुप्त अपने कक्ष में वहुमूल्य परिधान से सज्जित होकर प्रतीक्षा कर रहा था।

संध्या होने के थोड़ी देर बाद ही नर्म सचिव के साथ मन्दाकिनी पहुंची। उसे देखकर रामगुप्त ठगा सा रह गया। उसकी आँखों के सामने सौंदर्य सागर का सर्वश्रेष्ठ रत्न खड़ा था।

परिधान संस्कार कुशला शिप्रा के हाथों से मंदाकिनी सजाई गई थी। उसके शरीर पर बहुमूल्य रेशम वस्त्र थे। विविध अंग रत्न जटित स्वर्णालंकारोसे अलंकृत थे। सो सचमुच इस समय मंदाकिनी का सौंदर्य उर्वशी और रम्भा की कोटि का हो गया था। भिक्षुणी धर्ममित्रा के रूप में भी उसका सौंपर्यं कम आकर्षक नहीं था, फिर उस समय की मोहकता के सम्बंध में क्या कहना है ?

अत: प्रथम दृष्टि में ही रामगुप्त उस पर न्यौछावर हो गया। ससंभ्रम उठकर बोला, राजकुमारी जी का मैं स्वागत करता हूँ। आसन ग्रहण करें। दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया।

मधुर लास्य के साथ पदक्षेप करती हुई मंदाकिनी निर्दिष्ट आसन पर बैठ गई। मधुर स्वर से बोली, सम्राट की इस शालीनता पूर्ण कृपा से मैं कृतज्ञ रहूँगी।

उसके सामने दूसरे आसन पर बैठकर उसे मुग्ध दृष्टि से देखते हुए रामगुप्त ने कहा, मैंने सुना है राजकुमारी जी को बौद्ध दर्शन का प्रगाढ़ ज्ञान है। अत: कुछ शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश से कष्ट देने कीधृष्टता की है अपने उपदेश्य से मुझे अनुगृहीत करें ।

मुस्कराकर मन्दाकिनी, बोली सम्राट को मेरे विषयमें अत्युक्ति पूर्ण सूचना दी गई है वस्तुतः मैं अभी बौद्ध दर्शन के प्रथम वर्ग की छात्रा हूँ। यहाँ महामान्य संघस्थविर की सेवा में शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से ही आई हूं। हाँ इतना तो अवश्य है कि बौद्धधर्म के प्रति मेरी अटूट आस्था है।

रामगुप्त ने कहा, बड़े लोग अपने सम्बन्ध में इसी तरह कहते हैं। खैर, मुझे एक शंका है जिसे सामने उपस्थिति कर रहा हूँ। मैंने जहाँ तक समझा है, भगवान बुद्ध ने मध्यम मार्ग अपनाया था। और उन्होंने अहिंसा पर विशेष बल दिया था। किन्तु सृष्टि परम्परा क्रम को भंग कर देने की उनकी इच्छा नहीं थी। इस संबंध में आपका क्या मत है?

मन्दाकिनी भीतर से घबड़ा गई। क्योंकि उसे इस प्रकार की शास्त्रीय चर्चा का अभ्यास नहीं था। ज्ञान भी नहीं था। फिर भी वह चतुरा थी। कुछ रुककर बोली, सम्राट विद्वान हैं। बहुत से विद्वान भिक्षुओं के सम्पर्क में आने का सुअवसर मिला है। अतः इन विषयों पर आपका अभिमत तथ्य पूर्ण हो गया। स्वयं कहने की कृपा करें।

रामगुप्त भीतर से प्रसन्न हो उठा, क्योंकि उसने समझ लिया कि अभी यह धर्म में प्रौढ़ नहीं है। भावुकता वश इधर इसका झुकाव मात्र है। अतः बोला, यद्यपि मैं आपका विचार जानने के लिए उत्सुक हूँ। तथापि आपका आदेश है तो पहले अपना ही विचार कह देता हूँ। देखिए, मेरे विचार में सृष्टि परम्परा में सहयोग देना प्रत्येक प्राणी का धर्म है। उससे जो असमय में विमुख होता है, वह अधर्म का भागी होता है।

मुस्कराकर मन्दाकिनी ने पूछा, तो क्या आपका विचार है कि किसी कुमार या कुमारी को भिक्षु या भिक्षुणी नहीं बनना चाहिए? हां यह मेरा दृढ़ मत है। बुरा न मानिएगा। मैं आपका हीउदाहरण दे रहा

हूँ। आप ऐसी सुन्दरी राजकुमारी को संसार क्रम में योग दिए बिना भिक्षुणी बन जाना कभी उचित नहीं होगा।

मन्दाकिनी को मार्ग मिला। मुस्कराकर बोली मुझे आप सुन्दरी क्यों कहते हैं मैं तो अपने को वैसा नहीं मानती।

उत्फुल्ल स्वर से रामगुप्त ने कहा, आपने अब तक अपने पर ध्यान नहीं दिया है। जरा दर्पण के सामने जाकर तो देखिए कितना, अपूर्व सौंदर्य है मैं तो कहूँगा, ब्रह्मा के द्वारा घुणाक्षर न्याय से आपके सौन्दर्य का निर्माण हो गया है, नहीं तो ऐसा सौन्दर्य और कहीं भी तो मिलता ? मैं तो इस सौंदर्य को देखकर अपने को धन्य मानता हूँ।

तीव्र कटाक्ष कर मन्दाकिनी बोली, आप भी तो कम सुन्दर नहीं आप ऐसे सुन्दर युवक को मैंने कहीं नहीं देखा है।

रामगुप्त को रोमाञ्च हो आया। उसने सोचा कि यह अनिंद्य सुन्दरी मुझसे प्रभावित हो गई है उनके मन में यह बात भी आई कि जहां दुष्टा ध्रुवस्वामिनी ने मेरा अपमान किया है, वहीं यह मेरी इतना आदर करती है। अतः पुलक कर बोला राजकुमारी जी की दृष्टि में मैं सुन्दर हूँ यह जानकर मैं कृतार्थ हो गया। इच्छा होती है कि मैं अपने को आपके चरणों पर डाल दूँ।

मन्दाकिनी को अपनी सफलता से प्रसन्नता हुई। बोली नहीं किंतु दोनो हाथों को ऊपर कर वेणी की ग्रन्थि को ढीला करने लगी, जिससे उसके दोनों उरोज आगे की ओर तन गए। रामगुप्त ने उन्हें लोलुप दृष्टि से देखा। उसके ललाट पर पसीने की बूदें उभर आईं हाथ काँपने लगे।

मन्दाकिनी ने पुनः तीव्र कटाक्ष किया।

रामगुप्त वाणविद्ध विहग की तरह तिलमिला उठा। कुछ रुककर बोला, राजकुमारी जी ने अब तक विवाह क्यों नहीं किया है।

मुस्कराकर मन्दाकिनी बोली, अब मैं आपकी राय मानूँगी। जो कहें।

रामगुप्त प्रसन्न स्वर से बोला, सच तब तो मैं कहूँगा कि शीघ्र विवाह कर लें।

ठीक है, किन्तु मेरी रुचि की योग्य कोई मिलेगा, तब तो ?

आपकी रुचि कैसी है ?

मुझे आप जैसा युवक चाहिए। और वह पुनः कटाक्ष कर हंस पड़ी।

रामगुप्त को यह वरदान सा मालूम पड़ा। पुलक कर बोला, आज्ञा हो तो मैं अपने को सौंप दूँ ?

किन्तु ... ... ?

क्या ?

पट्टराजमहिषी जी विरोध करेंगी।

उसका नाम सुनते ही रामगुप्त जल उठा।

बोला, वह कुछ नहीं कर सकती है। और सच कहता हूँ, वह पद आपके योग्य है। वह आपको ही मिलेगा।

मन्दाकिनी सचमुच प्रसन्न हो उठी। थोड़ी सी अंगड़ाई लेकर बोली, आज, कुछ शांति सी मालूम पडती है। सोना चाहती हूँ, आज्ञा दें फिर आऊंगी।

रामगुप्त अधीर होकर बोला, नही देवि अभी मुझे छोड़कर मत जाय। यहीं आराम कीजिए ।

कहाँ ?

चलिए, ले चलता हूँ, कहकर उसने मन्दाकिनी को अंक में उठा लिया ।

—o—

: १७ :

वीरभद्र गुप्तचर होने के साथ अश्वसेना का गुल्मनायक भी था। उस समय मागधी सेना की देखरेख चन्द्रगुप्त के हाथों में थी। चंद्रगुप्त बड़ी पटुता से सेना के प्रत्येक विभाग का संगठन कर रहा था। सैनिकों के ऊपर उसका काफी प्रभाव था। सैनिक उसे देवता की तरह मानते थे।

प्रतिदिन सैनिकों के बीच कृत्रिम युद्ध का अभ्यास कराया जाता था। लक्ष्य वेध के लिए पुरस्कार वितरित किया जाता था। कई प्रकार की प्रतियोगिताओं का आयोजन होता था। इस प्रकार मागधी सेना की दक्षता बढ़ती जा रहीं था।

गत तीसरे दिन वीरभद्र को अपने गुल्म के साथ कृत्रिम युद्ध में सम्मिलित होने के लिए भट्टाश्वपति से आदेश मिला था। किन्तु वीरभद्र उसकी अवहेलना कर उसमें सम्मिलित नहीं हुआ। अतः सैनिक विधानानुसार वह बन्दी बना लिया गया था तथा कल सन्ध्या समय चन्द्रगुप्त ने उसे प्राणवध का दंड दे दिया था।

तदनुसार आज प्रातःकाल वधस्थल पर ले जाने के पूर्व वह पुनः चन्द्रगुप्त के सामने उपस्थिति किया गया।

चंद्रगुप्त ने रूक्ष स्वर से पूछा, तुम्हें कुछ कहना है ?

जी।

क्या ?

मेरे साथ अन्याय किया जा रहा है ?

कैसे ?

दो दिन पहले भी मुझे ही अभ्यास में भेजा गया था, फिर मुझको ही आदेश मिला ।

चन्द्रगुप्त ने कड़ककर कहा, किसको क्या आदेश मिलना चाहिए, यह देखने वाले तुम कौन हो ? इसके अतिरिक्त सेना में अनुशासन ही सब कुछ है तुमने उसकी अवहेलना की है । तुम्हारा दण्ड उचित है ।

तनिक रुककर उसने वधिकों को आदेश दिया कि इसे शीघ्र हमारी आँखों से दूर करो ।

वधिक वीरभद्र को बांधकर ले चले साथ ही सूचना वाहक नगाड़ा पीटकर वीरभद्र के दोष की सूचना देते हुए दन्ड की घोषणा को दुह-राता जा रहा था ।

नागरिक इस सम्मानित राजपुरुष को इस अवस्था में देखकर भय से काँपने लगे थे । जो देखता या सुनता था उसके हृदय में अज्ञात रूप से शासन के प्रति भय व्याप्त हो जाता था ।

वीरभद्र को लेकर वधिकों का दल बौद्ध विहार के रास्ते से आगे बढ़ा । बौद्ध विहार के सामने जाने पर यह दल कुछ देर तक रुक गया ।

विहार के बहुत से भिक्षु इस हिंसा वृत्ति को देखने के लिए बाहर निकल आये । और तथागत का नाम ले लेकर इस आज्ञा की निन्दा करने लगे ।

उन भिक्षुओं में दो तेजस्वी भिक्षु थे, जो काफी बेचैन मालूम पड़ । उनमें से एक ने दूसरे से पूछा, भन्ते, क्या इस अन्याय को हमें चुपचाप देखना चाहिए ?

दूसरे ने मुस्कराकर कहा, तो हम क्या कर सकते है ? आँख से कुछ रहस्य मय संकेत कर पहला बोला, तुम चाहो तो अपनी योग शक्ति का प्रयोग कर इसे छुड़ा सकते हो ।

क्या लाभ होगा ?

यह भी पूछने की बात है। यह तुम्हारा भक्त बन जायगा।

दूसरे ने पहले को संकेत से चुप करा दिया, और, धीरे से अपने पीछे आने का संकेत किया।

एकान्त में जाकर दूसरे ने कहा, तुम्हारा संकेत मैं समझ गया हूँ। सचमुच यह बहुत सुन्दर अवसर है। यदि किसी तरह इसे बचा लिया जाता है तो यह हम लोगों का ऋणी हो जायगा। विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि मगध शासन से प्रतिरोध लेने के उद्देश्य से यह हम लोगो को पूर्ण सहयोग देगा।

पहले ने प्रसन्न स्वर से कहा, यह गुप्तचर विभाग का श्रेष्ठ व्यक्ति है। इसे मागधी सेना की बहुत सी छिपी बाते मालूम होंगी। अतः यह हम लोगों के लिए परम उपयोगी होगा।

ठीक है किंतु.........?

क्या ?

हम लोगों की शक्ति क्षीण है। इस दुर्बल शक्ति से उसे कैसे छुड़ाया जा सकता है ?

आवश्यकता आने पर दुःसाहस से बहुत काम हो जाता है। हम लोग यहाँ सात आदमी हैं। अपने रूप को बदल कर यदि एकाँत स्थान में सहसा आक्रमण कर देगे, तो निश्चित रूप से सफलता मिल जायगी।

उसके साथ दो वधिक हैं ?

हाँ।

और सैनिक ?

दो हैं।

एक सूचना वाहक भी हैं।

वह क्या करेगा ? निश्शस्त्र है। देखकर ही भाग जायगा। वे चार हुए। हम सात हैं। कोई चिंता नहीं।

किंतु दिन का समय है। कहीं दूर से देख कर और सैनिक आ जाय, तब ?

युद्ध में वीरभद्र भी हम लोगों को सहायता देगा। और मैं समझता हूँ कि वीरभद्र इतना लोकप्रिय है कि प्राण रक्षा के लिए भागते समय उसे अन्य सैनिक नहीं रोकेंगे। खैर जो हो, हम लोगों को इस दिशा में अवश्य प्रयत्न करना चाहिए।

ठीक है। मैं साथियों को साथ लेकर चलता हूँ। आप भी आ जाइए।

चलो, कह कर वह भिक्षु तेजी से चला गया।

इस घटना के थोड़ी देर बाद राजवधिक वीरभद्र को लेकर वध-स्थल की ओर चले। सूचना वाहक वहीं से लौट गया। केवल चार शेष रह गये।

वधस्थल से कुछ इधर, रास्ते से उत्तर तरफ एक छोटा सा जंगल था। उसके उत्तर गंगा बहती थी। वधिकों का दल जैसे ही उस जंगल के पास पहुँचा कि सहसा सात अश्वारोहियों के दल ने उन पर आक्रमण कर दिया।

राजकीय सैनिक और वधिक इस आकस्मिक आक्रमण से घबड़ा गये, और, विरोध किये बन्दी को छोड़ कर भाग गये।

अश्वारोहियों में से एक शीघ्रता से वीरभद्र के निकट जाकर बोला, मित्र, तुम्हारे साथ मगध शासन नें अन्याय किया है। हम लोगों से यह अन्याय देखा नहीं गया है। अतः तुम्हें बचाने के लिए हम लोगों ने यह दुस्साहस किया है। अब तुम यहाँ से जल्द भागने का प्रबंध करो।

और उसने वीरभद्र का बन्धन खोल दिया। वीरभद्र विनम्र स्वर से बोला मित्र, आप लोगोंने जो मुझे जीवन दान दिया है उससे मैं आजन्म कृतज्ञ रहूँगा। किन्तु अब आप लोग मुझे अपनी ही शरण में राखें। मैं आप लोगों की सेवा कर अपने को धन्य करना चाहता हूं।

अश्वारोही बोला, तब ठीक है। आप लोगों के साथ ही चलें।

और उसने एक अश्वारोहीको अपना अश्व दे देने का संकेत किया।

वीरभद्र ने पूछा, किन्तु ये मित्र कैसे चलेंगे ?

अश्वारोही बोला, आप चिन्ता न करें। ये दूसरे अश्व से आ जायेंगे शीघ्रता कीजिए। यहाँ विलम्ब करना उचित नहीं है।

वीरभद्र अश्वारोही के द्वारा निर्दिष्ट अश्व पर आरूढ़ होकर उनके साथ चल पड़ा।

और क्षण भर में ही यह दल बन में विलीन हो गया।

: १८ :

मन्दाकिनी रामगुप्त के अन्तःकक्ष में ही रह गई थी। उसे आशा से भी अधिक सुख सम्मान प्राप्त हो गया था। सम्राट रामगुप्त को उसने अपनी कला कुशलता से वशीभूत कर लिया था।

किन्तु यह सब कुछ होने पर भी आज उसका मन खिन्न था। क्योंकि, उसका अन्तर अभी भी वीरभद्र से वैसा ही प्रेम करता था। उसने अपने मन में सोचा था कि राजकीय सुख सम्मान के साथ वह वीरभद्र को भी पा लेगी। फलतः इसी आशा से वह आगे बढ़ रही थी।

परन्तु उसके अनजाने अचानक वीरभद्र को दण्ड दिया गया, और वह किसी अज्ञात व्यक्ति की सहायता से पाटलिपुत्र से भाग गया। अतः मन्दाकिनी की समस्त योजना निष्फल हो गई।

उसे पश्चाताप होने लगा कि उसने व्यर्थ विलम्ब कर हाथ में आये हुए अपने सुख को खो दिया। अब उसे सभी राजकीय सुख नीरस प्रतीत होने लगे। उसे रामगुप्त से अरुचि सी हो गई। उसका अधीर मन यहाँ से भागकर वीरभद्र को खोजने के लिए व्याकुल होने लगा। किन्तु साथ ही इस दुष्कांड के मूलकारण चन्द्रगुप्त के प्रति उसका मन क्रोध से भर उठा। अंतः उसने मन में निश्चय किया कि चन्द्रगुप्त से बदला लेने के बाद हीं यहाँ से जाने के सम्बन्ध में विचार करूँगी। इसके अतिरिक्त यहाँ रह कर राजकीय सहायता से वीरभद्र का पता लगाऊंगी, और पता लग जाने पर रामगुप्त की सहायता से पुनः बुलाने का प्रयत्न करूँगी।

इस प्रकार विचार का वह चन्द्रगुप्त के विरोधी षडयंत्र में पूर्णतः सक्रिय हो गई ।

दो दिन बाद एक प्रहर रात्रि व्यतीत हो जाने पर मृद्वीकासव के मद से मत्त रामगुप्त मंदाकिनी के कक्ष में पहुंचा । किन्तु इस समय मंदाकिनी कैकेयी के परिवेश में शृंगार हीन होकर भूमि पर पड़ी हुईथी

उसकी इस दशा को देखकर रामगुप्त चौंक उठा । उसके समीप जाकर आकुल कंठ से बोला, देवि, किसने अपराध किया है कि तुम यों रुष्ट हो गई हो ? बोलो, तुम्हारे एक संकेत पर मैं धरती को उलट दूंगा ।

मंदाकिनी कुछ नहीं बोली, मुंह घुमाये लेटी रही । रामगुप्त ने उसके सिर पर हाथ रखकर प्रेमपूर्ण स्वर से कहा, सुन्दरी, उठो । तुम्हारी दीनदशा देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है ।

मंदाकिनी चमक कर बैठ गई । तुनक कर बोली, आपको मेरे दुख से क्या मतलब ? मैं जिऊँ या मरूं आपको क्या ? आपका संसार तो बना हुआ है ।

रामगुप्त ने उसका हाथ पकड़कर कहा, ऐसा मत कहो । तुम्हारे बिना मेरा संसार सूना हो जायगा । बोलो, बात क्या है ?

मंदाकिनी सिसककर रोने लगी ।

रामगुप्त ने अपने उत्तरीय से उसके आँसू पोंछकर कहा, तुमने इन आंसुओं को देखने में मैं असमर्थ हूं । क्या हुआ है, शीघ्र कहो ।

कुछ रुक कर गला साफ कर धीरे से मंदाकिनी बोली, क्या आप मुझे अपना मानते हैं ?

तुम्हें अब भी इसमें संदेह है ?

तब क्या आप मानिएगा कि मेरा संसार आप ही तक सीमित है ? मेरे सुख-सौभाग्य के आधार के बल आप ही हैं ?

देवि सत्य है।

मन्दाकिनी झट से रामगुप्त के पैर पर गिर पड़ी और उसके पैर को अपनी छाती से दबाकर सिसक कर रोने लगी ।

रामगुप्त उसके सिर को सहलाते हुए भरे गले से बोला, मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करूँ ? ओह तुम कुछ कहती क्यों नहीं हो ?

मंदाकिनी उठ कर बैठ गई। रामगुप्त की आँखों में आँखें डालकर बोली, आपसे प्रार्थना है कि आप मेरे सौभाग्य की रक्षा करें।

क्या साफ़ कहो।

कुछ लोग मेरे सौभाग्य को मिटाने का षड्यंत्र कर रहे हैं ।

वे कौन हैं ?

नाम कहने में भय होता है।

तुम्हें किसका भय है ? साफ़ कहो।

आप विश्वास करेंगे।

अधीर होकर रामगुप्त बोला, और कुछ नहीं । जल्द नाम बतलाओ ।

तो सुनिए तो रामकुमार चन्द्रगुप्त और पट्टराज महिषी ध्रुवस्वामिनी की ओर से अपनी आपकी हत्या कर मेरे सौभाग्य को समाप्त करने का षड्यंत्र हो रहा है।

रामगुप्त स्तब्ध हो गया। सहसा बोल न सका। पुनः मंदाकिनी बोली यह समाचार मुझे विश्वस्त सूत्र से मिला है। इसमें सन्देह का स्थान नहीं है।

रामगुप्त को पहले से ही संघस्थविर के आदमियों के द्वारा कुछ ऐसी ही सूचना मिली थी। अब इसके मुंह से सुनकर बहुत डर गया, पूछा, तुम्हें ठीक पता है ? मुझे तो विश्वास नहीं होता है।

कठोर कंठ से मन्दाकिनी बोली, आप सरल व्यक्ति है । छल-कपट नहीं जानते । अतः समस्त संसार को अपनी तरह निश्चय मानते हैं । किन्तु संसार वैसा नहीं है । आपको यदि विश्वास न हो तो ......

मन्दाकिनी के षडयंत्र का एक अंग यह था कि उसने एक दासी के द्वारा चन्द्रगुप्त के निकट ध्रुवस्वामिनी का संवाद भेजवाया था कि मैं बहुत अस्वस्थ हूँ । कृपया दर्शन दें ।

मंदाकिनी को अभी एक दासी ने संकेत से बतला दिया था कि चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी के कक्ष में आ गया है ।

रामगुप्त ने पूछा, रुक क्यों गई ? वाक्य पूरा करो ।

अभी ध्रुवस्वामिनी के कक्ष में जाकर देख लें ।

रामगुप्त ने क्रुद्ध कंठ से पूछा वहाँ क्या है ? वहाँ राजकुमार जी और पट्टराजमहिषी जी क्रीडा के साथ अपकी हत्या की योजना बना रहे हैं ।

तुम्हें कैसे पता चला है ?

रोज ही यह क्रम चलता है । आज भी है । अभी एक दासी कह गई है ।

रामगुप्त के शरीर में आग सी लग गई । उसने झट से कोष से तलवार खीच ली । कड़ककर बोला, अच्छा तो मैं अभी उन दोनों का सिर काट कर उन्हें नरक में भेज रहा हूँ ।

मन्दाकिनी बुद्धिमती थी । उसे भय हुआ कि रामगुप्त की इस शीघ्रता के कारण संभव है कि पाँसा उलटा पड़ जाय । क्योंकि चंद्रगुप्त वीर है, युद्ध कौशल में निपुर्ण है । रामगुप्त उसे पराजित नहीं कर सकता है । इसी की हत्या हो जायगी । अतः उसने रामगुप्त का पैर पकड़ कर आर्द्र कंठ से कहा, देव, क्रोध शान्त करें, मैं आपको उन दुष्टों के बीच में अकेले नहीं जाने दे सकती ।

रामगुप्त आवेश से बोला, मुझे मत रोको। कोई डर नहीं है। मन्दाकिनी ने रामगुप्त को बड़े मधुर लास्य से अपनी बाहों में बाँध लिया। और उसके कान से मुंह सटाकर बोली, प्रिय आपको मैं खतरे में नहीं जाने दूंगी। दुष्टा ध्रुवस्वामिनी तो यही चाहती है कि आपको समाप्त कर चन्द्रगुप्त को सम्राट बना दे। अवश्य ही और हत्यारे होंगे। मत जाइए। आपका एक इशारा ही उन्हें खतम कर देगा।

कामिनी के अंक में पड़े रामगुप्त को तलवार की तीक्ष्णता का भय हो आया। अतः जाने का विचार छोड़कर बोला, फिर भी मैं उन्हें देखकर विश्वास कर लेना चाहता हूँ।

यह हो सकता है। मैं उन्हें गुप्त रूप से दिखला सकती हुँ। किंतु आपको आवेश में नहीं आना होगा।

अच्छा चलो।

मंदाकिनी रामगुप्त को गुप्त मार्ग से ध्रुवसावमिनी के महल की ओर ले चलो। मार्ग में किसी ने नहीं देखा। अतः वे महल के गुप्त द्वार पर पहुँच गए। वहाँ एक रक्षक था। उसने द्वार खोल दिया। दोनों भीतर पैठें। इधर लोगों का अधिक आना जाना नहीं था अतः ध्रुवस्वामिनी के कक्ष के पिछले वातायन के समीप दोनों पहुंच गये। वातायन के कपाट में ध्रुवस्वामिनी ने एक छिद्र इसी कार्य के लिए गुप्त रूप से बनवा लिया था। उसने उसी छिद्र से रामगुप्त को देखने के लिए कहा।

रामगुप्त ने देखा, कक्ष के मध्य में शत वर्तिका दीप जल रहा था। उसके तीव्र प्रकाश में मणि माणिकों की आभा बिचित्र सौन्दर्य की सृष्टि कर रही है।

कक्ष के दक्षिण भाग में चन्द्रगुप्त खड़ा है। और उसके चरणों के पास ध्रुवस्वामिनी हाथ जोड़कर बैठी है। कुछ कह रही है।

जाकी रही भावना जैसी के अनुसार रामगुप्त ने समझा कि यह चन्द्रगुप्त को मेरी हत्या के लिए तैयार कर रही है। अतः वह पुनः आवेश में आ गया। फिर तलवार खींच ली।

किन्तु मन्दाकिनी सजग थी। उसने इसे अंक में भर लिया। धीरे से बोली, आपको खुद जाने की क्या जरूरत है ? यह काम अधिक कर देंगे।

चलिए।

रामगुप्त क्रोध में भरा हुआ लौट चला।

कक्ष में लौटने पर मन्दाकिनी बोली, देव, कार्य ऐसे होना चाहिए कि सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे। यह कार्य साधारण नहीं हैं क्योंकि, इसका संबंध राजकुमार और राजमहिषी से है। थोड़ी भी असावधानी से जन विद्रोह की संभावना हो सकती है। अतः गुप्त रूप से ही कार्य होना चाहिए।

कुछ सोचकर रामगुप्त बोला, तुम सचमुच बहुत बुद्धिमती हो। तुम्हारी आशंका ठीक है। तब कहो कैसे क्या किया जाय ?

मंदाकिनी ने रामगुप्त को पर्यंक पर बैठा दिया, और स्वयं उसकी बाईं ओर सट कर बैठ गई तथा उसकी ग्रीवा में बाँह डालकर कान से मुंह सटा कर बोली, अभी चन्द्रगुप्त से सेना का अधिकार अपने हाथों में ले लीजिए। और उन दोनों की गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगा दीजिए। साथ ही में एक दासी दूंगी, जिसे ध्रुवस्वामिनी की दासियों में नियुक्त कर दीजिए।

तब क्या होगा ?

वह दासी मौका पाकर ध्रुवस्वामिनी विष देकर खतम कर देगी।

रामगुप्त ने प्रसन्न स्वर से पूछा, फिर इसके बाद ?

ध्रुवस्वामिनी की हत्या का दोषारोपण चंद्रगुप्त पर करके उसे आसानी से समाप्त किया जा सकेगा, रामगुप्त प्रसन्न हो गया। बोला तुमने आज बहुत बड़ी दुर्घटना से मेरी रक्षा की है। पता नहीं क्रोध में मैं क्या कर देता ? जो तुम कहती हो, वही होगा।

मन्दाकिनी अपनी कूटनीति को सफल होते देखकर प्रसन्न हो उठी। उसने वेग से रामगुप्त का आलिङ्गन कर कहा, देव आप थक गए। विश्राम कीजिए।

मन्दाकिनी के रूप-गुण से अभिभूत रामगुप्त लेट गया। और ···।

—०—

: १९ :

वीरभद्र को आगे चलने पर पता चल गया कि यह दल शक गुप्त-चरों का है। और बातचीत में यह भी मालूम हुआ कि इन लोगों ने उसे अपनी ओर मिलाने के विचार से ही मुक्त कराया है।

अत: दल नायक के द्वारा प्रस्ताव किए जाने पर उसने पाटलिपुत्र के मगध शासन की ढेर सी निंदा करके उस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। फलत: गुप्तचर दल को उसका विश्वास हो गया, और उसने उसे शक सम्राट रुद्रसिंह की सेवा में यथा समय उपस्थित किया।

रुद्रसिंह अपेक्षाकृत अधिक सतर्क था, अत: सामान्य औपचारिक वार्ता के बाद उसने पूछा, वीरभद्र, सामान्य सैनिक प्रतियोगिता में सम्मिलित नहीं होने से ही तुम्हें प्राणवध दण्ड की आज्ञा मिली थी या और कोई कारण था।

और कोई कारण नहीं था।

विश्वास नहीं होता, क्योंकि तुम चंद्रगुप्त के अन्तरंग व्यक्ति थे, इसे तो मैं स्वयं जानता हूँ। अत: इस मामूली बात के लिए प्राणदंड की आज्ञा अश्चर्यजनक मालूम पड़ती है।

कुछ रुककर बीरभद्र बोला, देव, यह आश्चर्य जनक नहीं है। अपितु इसका नहीं होना ही आश्चर्यजनक होता।

चौंककर रुद्रसिंह ने पूछा, तुम्हारा आशय क्या है ? वीरभद्र बो देव जिसका विनाश होने को होता है, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है,

यह उक्ति आज मगध में शत प्रतिशत सत्य होने जा रही है। रामगुप्त और चंद्रगुप्त दोनों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। अत: उसके किसी भी कार्य पर आश्चर्य नहीं किया जा सकता है।

रुद्रसिंह भीतर प्रसन्न हो गया। पूछा आज कल उन दोनों में विरोध हो गया है क्या ?

विरोध की बात तो दूर है आज वे एक दूसरे के प्राणों के शत्रु बन गए हैं।

क्या कोई विशेष बात हुई है ?

जी, इसका मूल कारण ध्रुवस्वामिनी है। चंद्रगुप्त ने उससे विवाह करने का निश्चय किया था, किन्तु रामगुप्त ने उससे स्वयं विवाह कर लिया है।

फलत: दोनों से शत्रुता शुरू हो गई है ।

रामगुप्त को ऐसी ही सूचना पहले भी मिली थी। सो वीरभद्र के कथन पर उसे विश्वास हो गया। कुछ रुककर उसने फिर पूछा, अच्छा कहो, क्या मैं तुम्हारे ऊपर विश्वास करूँ ? विश्वासघात तो न करोगे ?

वीरभद्र उत्तेजित होकर बोला देव मैं अभी आपको प्रमाण देने के लिए तैयार हूँ। कहें तो सिर काट कर चरणों में रख दूँ।

इसकी आवश्यकता नहीं। किन्तु तुम मुझे क्या सहायता दोगे ?

मैं बहुत बड़ी सहायता दूँगा। मुझे गुप्त साम्राज्य की सैनिक गतिविधि का रहस्य मालूम है। उससे अवगत कराकर मगध पर विजय प्राप्त करने में सहायता दूँगा। फिर तनिक रुककर बोला, देव मेरे हृदय मे प्रतिहिंसा की आग जल रही है। मैंने प्रण किया है कि इन विलास प्रिय अविवेकी स्त्रैण शासकों से मगध की जनता को मुक्त कराऊंगा।

प्रसन्न स्वर से रुद्रसिंह ने पूछा, अब तुम्हारे ऊपर मुझे विश्वास हो गया है। कहो पाटलिपुत्र पर आक्रमण के समय क्या तुम हमें कोई गुप्त मार्ग बतलाओगे ?

कुछ सोचकर वीरभद्र बोला, जी। उत्तर प्राचीर के पश्चिम कोण से पूर्व दिशा में सौ हाथ बढ़ने पर एक सुरंग है, जिस पर भीतर की ओर केवल एक सैनिक पहरा देता है। उस रास्ते से सरलता पूर्वक भीतर प्रवेश किया जा सकता है।

वीरभद्र के मुंह से इस सूचना को सुनकर उस पर रुद्रसिंह का पूर्ण बिश्वास हो गया क्योंकि कल ही यह सूचना उसे पाटलिपुत्र के संघ स्थविर से प्राप्त हुई थी। अतः मुस्कराकर बोला, तुम वस्तुतः ईमानदार आदमी हो। मैं समझ गया, तुमसे हमें बहुत मदद मिलेगी। मैं आज ही तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि पाटलिपत्र पर अधिकार हो जाने के बाद तुम्हें वहाँ का प्रधान सेनापति बना दिया जायगा।

झुककर अभिवादन करने के बाद वीरभद्र बोला, देव वहाँ से थोड़ी दूर पर ही उत्तरी द्वार है। सुरंग पर अधिकार कर लेने के बाद इस पर अधिकार कर लेना कठिन नहीं होगा।

ठीक है, तुम्हारी सहायता से अवश्य सफलता मिलेगी।

वीरभद्र बोला, देव सफलता में कोई सन्देह नहीं है। उस सुरंग को मैं खुद खोलूंगा। फिर तनिक रुककर बोला, देव, वहाँ से थोड़ी दूर पर ही एक बौद्ध विहार है। उन लोगों से भी हमें सहायता मिल जायगी।

रुद्रसिंह विश्वास हो जाने पर भी अभी खुलना नहीं चाहता था। क्योंकि वह अनुभवी तथा सतर्क राजनीतिज्ञ था। उसने कहा कि बौद्धों के द्वारा भी मुझे ये सूचनायें मिली हैं। हँसकर बोला, मुझे तो बौद्धो का विश्वास नहीं, किन्तु तुम प्रयत्न करना।

फिर तनिक रुककर रुद्रसिंहने पूछा, तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं है ?

नहीं देव, कृपा से आनन्द में हूँ ।

फिर मन्त्री की ओर घूमकर रुद्रसिंह बोला, देखिए, आप खुद इनकी सुख-सुविधा पर ध्यान रखें ।

वीरभद्र को समझने में देर न लगी कि मेरी निगरानी करने का संकेत दिया जा रहा है । अतः वह मन में मुस्कराकर उठा । और शक सम्राट को प्रणाम कर बोला, देव एक प्रार्थना है ।

कहो ।

मैं जन्मजात सैनिक हूँ । अतः सैनिक अभ्यास छोड़ना मेरे लिए बड़ा कठिन है ।

तो, क्या चाहते हो ?

अभ्यास करने की सुविधा ।

हंसकर रुद्रसिंह बोला, मिलेगी । किन्तु अभी तुम विश्राम करो ।

अच्छा, अब जाओ ।

वीरभद्र प्रणाम कर लौट आया ।

—०—

: २० :

मन्दाकिनी के परामर्शानुसार मन्दमति रामगुप्त ने चन्द्रगुप्त पर ध्रुवस्वामिनी के साथ अवैध संपर्क रखने का लाञ्छन लगाकर उससे सैनिक शासन की सत्ता छीन ली। और एक प्रकार से ध्रुवस्वामिनी को बन्दी बना दिया।

चरित्रवान् चन्द्रगुप्त के चित्र में गहरी चोट लगी वह तिलमिला उठा। उसने तलवार खींच ली। रामगुप्त का विरोध करने का निर्णय किया। किन्तु इस स्थिति में भी उसकी संस्कारी बुद्धि ने चंचल चित को रोका। उसे मर्यादा की याद दिलाई। अतः उसके हाथ से तलवार गिर पड़ी। वह वहीं भूमि पर बैठ गया। आँखें मूद ली।

एक तरफ उसे यह याद आने लगा कि सभी लोग उसी कों सम्राट् याद आने लगा कि सभी उसी को सम्राट पद दे रहे थे। ध्रुवस्वामिन उसी की पत्नी बन रही थी। मगध साम्राज्य का समस्त सुख वैभव उसके पैरों पर लोट रहा था। किन्तु उसीनें भ्रातृ प्रेम के कारण उसे तुच्छ तृण की तरह ठुकरा दिया। भाई को सम्राट पद देकर उसे आत्मिक आनन्द मिला।

किन्तु आज उसी भाई नें उस पर इतना घृणित लाञ्छन लगाते समय कुछ भी विचार नहीं किया है। आह, स्वार्थ मनुष्य को अन्धा बना देता है। स्वार्थ के सामने रक्तज स्नेह भी नगराज बन जाता है।

इसी समय चंद्रगुप्त के मन में संसार कीं असारता का भाव उठा, वह फिर सोचने लगा, यह संसार कितना झूठा है। पिताजी हम लोगों से कितना प्रेम करते थे। हम लोगों की सुख'सुविधा का उन्हें कितना

ध्यान रहता था। अपनी आंखों के सामने से हमें क्षणभर दूर करना नहीं चाहते थे। साथ ही उस राज्य के प्रति भी उनके मन में कितना ममत्व था। इसी की चिंता में उन्हें रात को नींद भी नहीं आती थी।

किन्तु हमको और इस राज्य को छोड़कर उन्हें चला जाना पड़ा है। आज यह राज्य नष्ट हो जाय हम नष्ट हो जाँय, इस पर उनका कुछ बश नहीं रह गया है। फिर इस राज्य के लिए अथवा मिथ्या मान मर्यादा सुख-स्वार्थ के लिए द्वेष करना, दुख मानना क्या उचित है ?

नहीं, कभी नहीं। मुझे इस राज्य से मानापमान से कोई मतलब नहीं। सब झूठा है। प्रपञ्च है। माया है। भैया के मन से जो आवें, करें। मैं उसका विरोध नहीं करूँगा। मैं एकांत में रहकर चिन्तन और मन करूँगा। यह मेरे लिए वरदान होगा।

इसी समय सेवक ने आकर सूचना दी। देव, महाप्रतिहारी और भट्टाश्वपति दर्शन करना चाहते हैं।

अनिच्छा से चन्द्रगुप्त ने कहा, भेज दो। और स्वयं उठकर आसन पर बैठ गया।

थोड़ी देर बाद आकर महाप्रतिहारी तथा भट्टाश्वपति अभिवादन कर चुपचाप सिर झुका कर खड़े हो गए।

बड़े ही शांत और विनम्र स्वर से आसन की ओर इंगित कर चंद्रगुप्त ने कहा, आर्य, हम लोग आसन ग्रहण करने की कृपा करें।

निर्दिष्ट आसन पर बैठकर भट्टाश्वपति ने क्षुब्ध कंठ से कहा, महाराजकुमार हम लोगों को सम्राट का आदेश ज्ञात हुआ है। किंतु क्षमा करें, हम लोग उसे मानने के लिए तैयार नहीं हैं। अत: आपका आदेश प्राप्त करने के लिए सेवा में उपस्थिति हुए हैं।

मन्द स्वर से चंद्रगुप्त ने कहा, मैं आप लोगों के क्षोभ को समझता हूँ। फिर भी मैं आप लोगों से अनुरोध करूँगा कि आप लोग

व्यक्ति विशेष पर ध्यान न देकर मगध साम्राज्य पर ध्यान दें। और, उसी की सुरक्षा नाम पर अपने मतभेद को भुलाने की कृपा करें।

महाप्रतिहारी ने कहा, देव, चिरस्मरणीय स्वर्ग वासी सम्राट ने बहुत कुछ समझ कर ही आपको सम्राट बनाने का निर्णय किया था। मैं भी वृद्ध हो चुका हूँ। अपने अनुभव के आधार पर ही मैंने भी उस विचार का समर्थन किया था, और, आप से भी प्रार्थना की थी। किन्तु आपने अपने शील सौजन्य के कारण उस पद को स्वीकार नहीं किया। परन्तु देखिए, अधिक दिन नहीं बीते, कुपरिणाम सामने उपस्थित हो गया।

चन्द्रगुप्त ने सिर नीचे कर धीरे से कहा, आर्य का कथन सर्वथा सत्य है। किन्तु मैं इसे ईश्वरेच्छा मानता हूँ। और, आपके सामने सच कहता हूँ, पहले मुझे भी क्षोभ हुआ है' परन्तु अब मुझे प्रसन्नता हो रही है कि ईश्वर की कृपा से मुझें शान्ति प्राप्त करने का सुअवसर मिला है।

भट्टाश्व पति ने कहा, ठीक ही तो है। आप शान्ति प्राप्त करें, और, कोई रस-विलास में डूबा रहे। इस प्रकार पूर्वजों के रक्त से सींचा गया मगध साम्राज्य भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाय, क्या हानि है?

महाप्रतिहारी ने कहा, आयुष्मन, भट्टाश्वपति बहुत ही दु:खी हैं। इनका कथन है कि सैन्य शासन से आपको अलग कर देने का सैनिकों पर बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ा है। सैनिकों में असन्तोष है। सो उनकी दक्षता में त्रुटि आ जायेगी, ऐसी आशंका है।

आकुल कंठ से चन्द्रगुप्त ने कहा, आर्य, मुझे विश्वास हो रहा है कि अदृश्य ईश्वरेच्छा की प्रेरणा से ही यह सब कुछ हो रहा है। मैं अपने को विवश अनुभव करता हूँ। किसी भी परिस्थिति में मैं भैया का विरोध नहीं कर सकूँगा। वे मुझे प्राण दण्ड भी दें, तो भी मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा।

भट्टाश्वपति ने क्षुब्ध कंठ से कहा, महाराज कुमार, मुझें विश्वास नहीं हो रहा है कि आपको गीता का स्मरण नहीं है। क्या भगवान कृष्ण ने कर्तव्य के नाम पर अर्जुन को गुरु और पितामह तक से युद्ध निर्देश नहीं दिया था ? फिर आप के सामनें मगध साम्राज्य की रक्षा का कर्तव्य नहीं है क्या ?

व्याकुल होकर रुद्ध कंठ से चंद्रगुप्त ने कहा, आर्य, मुझे ब याद है। सब सोचता हूँ। किंतु अंत में अंतरात्मा विवश बना देती है। मैं कुछ नहीं कह सकूंगा

भट्टाश्वपति ने कहा मुझे गुप्तचरों के द्वारा ज्ञात हुआ है कि शकों कि ओर से मगध साम्राज्य पर आक्रमण करने की तैयारी पूरी हो चुकी है। किसी भी क्षण आक्रमण हो सकता है।

किंतु यहाँ ......

उन्हे रोक कर चँद्रगुप्त में कहा मुझें भी सूचना मिली है। परँतु आपने अभी तक सम्राट को सूचित किया है या नहीं ?

कर चुका हूँ।

उनका क्या निर्देश है ?

क्रुद्ध कंठ से भट्टाश्वपति ने कहा, उनके निर्देशके संबंध में क्या कहूँ, मैंने जब आक्रमण की सूचना दी तो उन्होंने कहा कि यह गलत सूचना है। क्योंकि शक सम्राट बौद्ध हैं। वे हिंसा के लिए प्रवृत्त न होंगे।

चन्द्रगुप्त ने खिन्न स्वर से पूछा, क्या स्थानीय बौद्धों के द्वारा सम्राट के मन में भ्रम उत्पन्न किया जा रहा है ?

हाँ देव ! इस षड्यन्त्र के प्रधान संचालक संघस्थविर हैं। उन्हीं के द्वारा भ्रम उत्पन्न किया जा रहा है।

चन्द्रगुप्त ने दुःखी स्वर से कहा, धर्म को राजनीति संबन्धित कर कुछ स्वार्थी लोगों ने इस बौद्ध धर्म का अहित करना शुरु कर दिया है।

महाप्रतिहारी ने कहा, आयुष्मन, मैं आज ही भविष्य वाणी करता हूँ कि इसी राजनीतिक संपर्क के कारण बौद्ध धर्म भारत से समाप्त हो जायगा।

चन्द्रगुप्त ने दुःखी हो कर कहा, आर्य, आपने संघस्थविर को समझाने का प्रयत्न क्यों नहीं किया है ?

मैंने पूर्ण प्रयत्न किया है। किन्तु सफल न हो सका हूँ।

क्यों ?

बौद्ध धर्म राजकीय धर्म हो जायगा, इसका उन्हें पूर्ण विश्वास दिलाया गया है।

कुछ देर चुप रह कर चन्द्रगुप्त ने कहा, आर्य, परिस्थिति ... ही गंभीर है। मैं अपने को विवश पाता हूँ। अब, आप लोगों का ही भरोसा है। भैया की बातों पर ध्यान न दें। मातृ भूमि की प्रतिष्ठा के नाम पर देश को बचाने का प्रयत्न करें।

और उसका गला भर आया।

कुछ देर चुप रह कर् अच्छा, अब आज्ञा दें, कह कर वह अन्तः कक्ष में चला गया।

भट्टाश्वपति और महाप्रतिहारी अत्यन्त दुःखी होकर लौट पड़े।

—o—

पाँच दिन बाद ही, समस्त पाटलिपुत्र सूर्योदय से पूर्व ही जग गया, क्योंकि, अचानक बड़े जोर से युद्धका नगाड़ा बज रहा था। सज्जित सैनिकों अश्व शीघ्रता से इधर उधर दौड़ रहे थे। तुरही का निनाद आमन्त्रण दे रहा था।

भय त्रस्त नागरिकों को जिज्ञासा करने पर ज्ञात हुआ कि शक सम्राट रुद्रसिंह ने मगध साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया है। और सीमारक्षक सैनिकों को पराजित कर उसके सैनिक दूर तक भीतर चले आये हैं।

वीर मागध नागरिकों के लिए युद्ध का संवाद कोई नया नहीं था, क्योंकि सम्राट समुद्रगुप्त की विजयिनी तलवार निरन्तर चमकती ही रहती थी। परन्तु आज नई बात यह थी कि मगध पर आक्रमण हुआ था मागधों को दूसरे पर आक्रमण करने का अभ्यास था, न कि अपने पर आक्रमण झेलने का। अतः यह संवाद समस्त मागधों को भीत बना रहा था।

सम्राट रामगुप्त सपरिवार युद्ध में जाने के लिए तैयार हो रहा था। और उसने चन्द्रगुप्त को भी साथ चलने का आदेश दिया था।

किंतु चंद्रगुप्त को जाने की इच्छा नहीं थी। क्योंकि वह आज कल समस्त प्रपञ्चों से उदासीन हो गया था।

लेकिन रामगुप्त को उस पर विश्वास नहीं था, अतः वह उसे पाटलिपुत्र में छोड़ना नहीं चाहता था। वह सोचता था कि मेरे चले

जाने पर यह सम्राट पद पर अधिकार कर लेगा। फलतः उसके दबाव देने पर अन्त में चन्द्रगुप्त भी तैयार हो गया।

दो घड़ी दिन बीतने के बाद, विजयिनी मागधी सेना को लेकर रामगुप्त अपने परिवार के साथ युद्ध यात्रा पर चला। विचार हुआ कि राजधानी से बहुत ही आगे जाकर शक सेना को रोका जाय।

तीसरे दिन सन्ध्या समय धर्मरतन के निकट मागधी सेना का पड़ाव पड़ा। पता चला था कि शक सेना अभी दूर है। कल सन्ध्या समय तक उससे मुठभेड़ होने की आशा है। अतः मागधी सेना निश्चिन्त हो कर विश्राम करने लगी।

किन्तु एक घड़ी रात रहते ही अचानक सेना की दाहिनी ओर से शक सेना ने आक्रमण कर दिया। सो इस अप्रत्याशित आक्रमण से मागधी सेना ततबुद्धि हो गई। विशृंखलित होने लगी। चारों ओर हाहाकार मच गया।

परन्तु अचानक सैनिकों ने देखा कि युवराज चन्द्रगुप्त मशाल की रोशनी के साथ हाथी पर बैठा हुआ शकों पर वाण वर्षा कर रहा है। और ललकार कर सैनिकों को बढ़ने का आदेश दे रहा है।

मगध सैनिकों में विजली सी कौंध गई।

उनमें अपूर्व उत्साह छा गया। वे बड़े वेग से शकों के ऊपर टूट पड़े।

वस्तुतः चन्द्रगुप्त वीर था। युद्ध की गति विधि से पूर्ण परिचित था। आकस्मिक आक्रमण को देख कर उसने सोचा कि यदि शीघ्र इसे रोकने का प्रयास न किया तो रात्रि के अन्धकार में मागध सेना अवश्य पराजित हो जायगी।

अतः इसकी उदासीनता दूर हो गई थी। वह स्वयः युद्ध में कूद पड़ा था।

फलत: थोड़े युद्ध के बाद ही शकों के पैर उखड़ गये। वे भागने लगे। असल में यह शक सेना का छोटा सा दल था, जो छिप कर आक्रमण करने के लिए आया था। उन लोगों ने सोचा था कि इस प्रकार अल्प प्रयास से ही मागध सेना को अधिक हानि पहुचाई जा सकती है। और जिससे मनोबल हीन मागध सेना को कल के प्रत्यक्ष युद्ध में निश्चित रुप से पराजित किया जा सकेगा। परन्तु उनकी चाल न चली। चन्द्रगुप्त की तत्परता ने उसे विफल कर दिया। सो, बहुत हानि उठा कर शक सेना भाग गई।

परन्तु मगध दुर्भाग्य अभी समाप्त नहीं हुआ था। उस पर केतु की छाया मडरहा रही थी। क्योंकि चन्द्रगुप्त जैसे ही विजय लाभ कर लौटा, उसे स्वागत के बदले रामगुप्त का ईर्ष्यायुक्त कटु वचन सहना पड़ा।

रामगुप्त ने रूक्षस्वर से पूछा, तुम्हें मैंने युद्ध में सम्मिलित होने से मना किया था, तुमने मेरे आदेश की अवहेलना क्यों की ?

चन्द्रगुप्त ने विनीत स्वर से कहा, परिस्थिति गंभीर देख कर मैं अपने को रोक नहीं सका। क्षमा करें, आदेश की अवहेलना का विचार नहीं था।

रामगुप्त के मन का सन्देह और बढ़ गया। उसने सोचा कि सैनिकों पर प्रभाव जमाने के उद्देश्य से ही उसने ऐसा किया है। साथ ही यह सैनिकों की दृष्टि में मुझे हीन दिखलाना चाहता है। अत: कटु स्वर से बोला, मगध की रक्षा का उत्तरदायित्व तुमसे अधिक मुझ पर है। यह तुम्हारा बहाना है। वस्तुत: तुम मेरा अपमान कराना चाहते हो।

नहीं, तो।

नहीं तो कहने से ही मैं विश्वास नहीं करूंगा। तुम्हें राजदंड भोगना होगा।

इस कुसमय में गृहकलह होना उचित नहीं है, यह सोचकर चंद्र-गुप्त बोला, आपका प्रत्येक आदेश शिरोधार्य है ।

ठीक है, युद्ध तक तुम अपने को बन्दी समझो ।

स्वीकार है, कहकर चंद्रगुप्त अपने शिविर में चला गया ।

और रामगुप्त के आदेश से कुछ सैनिकों ने चन्द्रगुप्त के शिविर को घेर लिया ।

यह समाचार बिजली की तरह सैन्य शिविर में व्याप्त हो गया । सैनिकों में क्रोध की लहर लहरा उठी । बहुत से सैनिक विद्रोह करने के लिए उतावले हो गए ।

किन्तु चन्द्रगुप्त ने गुप्त रूप से सेनापति के निकट संदेश भेजा कि इस समय सैनिकों को संभाले रखें फलतः सेनापति अथक प्रयत्न से विद्रोह रुका, किन्तु सेना का असन्तोष नहीं मिटा । सेना में उत्साह नहीं रह गया ।

प्रातःकाल ही पुनः शकों ने आक्रमण किया । यह आक्रमण अत्यंत वेगशाली था । मागध सैनिकों ने पूर्वाभ्यास के कारण प्रथमा क्रमण के वेग को तो झेल लिया, किन्तु उनमें उत्साह की कमी थी । युद्ध के लिए उचित उत्तेजना का अभाव था । फलतः दूसरे आक्रमण के समय मगध सेना के पर उखड़ने लगे ।

रामगुप्त स्वयं हाथी पर चढ़कर युद्ध का संचालन कर रहा था ।

उसने सैनिकों में जोश भरने का प्रयत्न किया, किन्तु कोई फल नहीं मिला । रामगुप्त की बाँह में दो तीर चुभ गए । वह बेहोश सा हो गया । उसी समय शक सेना ने और जोर से हमला किया, मगध भाग चली ।

और रामगुप्त शत्रुओं के बीच घिर गया वहाँ घमासान लड़ाई होने लगी, किन्तु रामगुप्त के बन्दी हो जाने की संभावना बढ़ती ही गई । असंतुलित मागधी सेना ढेर की ढेर करती गई ।

किन्तु ठीक इसी समय, अचानक शक सेना के चार हाथी पागल हो गए। सँभवत: उन्हें किसी ने धतुरा दे दिया था। अत: वे शकसेना को ही कुचलने लगे।

इस तरह संयोग से रामगुप्त बन्दी होने से बच गया। किन्तु आधी से अधिक मगध सेना पहले दिन के युद्ध में ही खतम हो खत्म हो गई।

रात हुई। युद्ध विराम हुआ। किन्तु मागधोंने देखा कि पृष्ट भाग पर भी शक सेना ने बगल से बढ़कर घेरा डाल दिया है। अत: मागधों ने समझ लिया कि सूर्योदय होते ही किसी का भी जीवित रहना सँभव नहीं है।

इसी समय रुद्र सिंह की ओर से एक राजदूत संधि प्रस्ताव लेकर आया।

उसे रामगुप्त के सामने उपस्थित किया गया। रामगुप्तने लिखित प्रस्ताव को देखा, उसमें लिखा था कि यदि पट्टराजमहिषी ध्रुवस्वामिनी को रामगुप्त दे दें तो शक सेना लौट जायगी। और सदा मगध के साथ मैत्री बनी रहेगी।

पत्र को पढ़कर पहले तो रामगुप्त को क्रोध हुआ, किन्तु तत्काल उसकी कायरता ने तथा ध्रुवस्वामिनी के प्रति उत्पन्न घृणा ने उसे प्रस्ताव को स्वीकृत करने के लिए तत्पर कर दिया। अत: उसने राजदूत से कहा कि आप कुछ देर विश्राम करें। मैं मंत्रियों से परामर्श कर उत्तर दूँगा।

और वह अपने शिविर के अन्त कक्ष में चला गया

—o—

: २२ :

रामगुप्त ने भीतर जाकर मन्दाकिनी से प्रस्ताव की बात कहकर पूछा कि इसका क्या उत्तर दिया जाय ?

मन्दाकिनी को बौद्ध गुप्तचरों के द्वारा पहले ही विदित हो चुका था कि यह प्रस्ताव आने वाला है। सो वह बड़ी आतुरता से इस प्रस्ताव की प्रतीक्षा कर रही थी, क्योंकि, इस प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर उसे पट्टराजमहिषी पद प्राप्त होने वाला था। अतः अपनी प्रसन्नता को छिपाकर कृत्रिम गंभीरता से बोली, देव प्रश्न बड़ा जटिल है क्योंकि एक तरफ राजकुल की प्रतिष्ठा है तो दूसरी तरफ प्राण धन सब कुछ है प्रस्ताव माना जाता है तो प्रतिष्ठा जाती है न माना जाता है तो प्राणहानि होती है, सर्वस्व चला जाता है। ऐसी स्थिति में काफी सोच समझकर कर्तव्य निश्चित करना चाहिए। रामगुप्त झुंझला कर बोला, आज के युद्ध को देखकर यह निश्चित है कि कल हम लोग जीवित न रह सकेंगे। मगध की सेना इस प्रकार पराजित होगी, इसकी मुझे तनिक भी आशंका नहीं थी। मालूम पड़ता है चन्द्रगुप्त के संकेत पर ही सैनिकों ने असहयोग कर दिया है। अब मैं सोचता हूँ कि इस उलझी हालत में दुष्टा ध्रुवस्वामिनी को देकर महाविनाश से छुटकारा पाया जाय। फिर आगे अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर शत्रुओं से बदला लिया जा सकेगा।

मन्दाकिनी ने कहा, देव का विचार उत्तम है। इस बिगड़ी स्थिति में इसके अतिरिक्त दूसरा रास्ता नहीं है। ध्रुवस्वामिनी इस राज्य में

धूमकेतु की तरह आई है। उसकी छाया के हटने पर ही विघ्न दूर होंगे।

रामगुप्त ने कहा, हाँ उसे भेज देना ही ठींक है। अच्छा, उससे भी कह देता हूँ यह कह कर वह ध्रुवस्वामिनी के निकट गया।

आजन्म शकों से घृणा करने वाली ध्रुवस्वामिनी शकों की विजय का संवाद सुनकर अत्यंन्त दुःखी थी। उसके मन में इतना क्रोध था कि वह स्वयं युद्ध में जाने के लिए उतावली हारे हीं थी। सो इस समय अचानक रामगुप्त को देख कर उसके मन में दया उत्पन्न हो गई। उसने आगे बढ़कर रामगुप्त का स्वागत किया। बोली आर्य, युद्ध में हार जीत होती रहती है। घबड़ाने की बात नहीं हैं। थोड़ी सी सावधानी से ही कल अवश्य जीत होगी।

हंसकर रामगुप्त बोला, अब जीत हार की बात छोड़ो। शकों की ओर से संधि प्रस्तांव आया है। मैंने उसे मान लेने का विचार किया है। उसे मान लेने सें सबसे अधिक तुमको लाभ होता है।

क्या प्रस्ताव है ?

रुद्रसिंह तुम्हें अपनी पट्टराजमहिषी बनाना चाहता है।

ध्रुवस्वामिनी को मालूम पड़ा कि उसके कानों में पिघला शीशा डाल दिया गया है। तिलमिला कर बोली, आपके मुख से यह क्या निकल रहा है ?

ठीक निकल रहा है। तुम्हें मेरे यहाँ कष्ट है। रुद्रसिंह के यहां तुम सुखी रहोगी।

रूक्ष स्वर से ध्रुवस्वामिनी ने पूछा क्या आपने इसे स्वीकार कर लिया है ?

इसी में भलाई है।

क्या आपको अपने कुल की प्रतिष्ठा का भी ध्यान नहीं है ?

मगध साम्राज्य के बच जाने पर सब कुछ मिलेगा। प्रतिष्ठा भी मिलेगी।

ओह इतना घृणित विचार। ठीक है, आप मेरे शरीर को भेज दीजिए। किंतु मेरी आत्मा को आप नहीं भेज सकते। रामगुप्त ने कुछ नम्र स्वर से कहा, देखो, तुम्हारें चले जाने में ही तुम्हारी और हमारी दोनों की भलाई है। जाने की तैयारी करो।

ध्रुवस्वामिनी फ़ुफकार कर बोली, अच्छा पहले राजकुमार चंद्रगुप्त से पूछ लेती हूँ। चंद्रगुप्त का नाम सुनकर रामगुप्त भड़क उठा। कड़ककर पूछा, उससे क्यों पूछोगी ? वह कौन होता है ?

वही लाया है सो वह भी उत्तरदायी है। नहीं वहाँ तुम्हें नहीं जाना होगा।

ध्रुवस्वामिनी क्रोध से काँप गई। बोली, मुझे कोई नही रोक सकता है।

और वह नागिन सी फुफकार कर पीछे के रास्ते से बाहर निकल गई।

थोड़ी देर तक रामगुप्त स्तब्ध सा रह गया। किन्तु क्षण भर बाद ही, क्रोध से जलता हुआ वह भी उसी राह से उसके पीछे दौड़ा।

ध्रुवस्वामिनी सीधे दौड़ती हुई चन्द्रगुप्त के कक्ष में पहुची। और, उसके पैर पर गिरकर बोली, तुम कितने कठोर हो, क्या अब भी मुझे नहीं बचाओगे ?

चन्द्रगुप्त ने घबड़ा कर ध्रुवस्वामिनी को उठाया, पूछा, क्या बात है ?

आपने सुना नहीं है ? आपके भाई जी राज्य के मूल्य के रूप में मुझे रुद्रसिंह की दासी बनाकर भेज रहे हैं।

चन्द्रगुप्त का क्रोध आग की तरह भड़क उठा। वह दहाड़ कर बोला, यह नहीं हो सकता है। आप निश्चित रहिए।

इसी समय नंगी तलवार लिये हुए रामगुप्त पहुँचा। चीख कर बोला, बेहया, बदचलन, अब तुम्हें कोई नहीं बचा सकता है। तुम्हारा केश पकड़ कर घसीट कर ले चलेंगा।

चन्द्रगुप्त पहले पहल रामगुप्त के सामने कठोर कंठ से बोला, भैया, आप पागल हो गये हैं ? आपको अपने वंश के गौरव का भी ध्यान नहीं है ?

बदमाश, मैं सब समझता हूँ। तुम्हारे इशारे पर ही यह सब हो रहा है। चुपचाप सामने से हट जाओ, नहीं तो यह तलवार पहले तुम्हारे गले पर ही पड़ेगी।

मुझे मरने का भय नहीं है। किन्तु यह अनर्थ नहीं होने दूँगा।

रामगुप्त बिना कुछ कहे तलवार तानकर चन्द्रगुप्त पर झपट पड़ा। और, बड़े वेग से उसने तलवार चला दी।

किन्तु चन्द्रगुप्त बड़ी स्फूर्ति से झुक कर बायीं बगल कूद गया। वार खाली गया। रामगुप्त क्रोध में भैंसा बन गया। बिना कुछ समझें पुन: झपटा। किन्तु तत्क्षण ध्रुवस्वामिनी ने लटकती हुई कटार खींच ली, और पीछे से तड़िल गति से रामगुप्त की पीठ में कटार घुसेड़ दी। रामगुप्त चीख कर गिर पड़ा।

चन्द्रगुप्त दौड़ कर उसके पास गया, किन्तु तब तक वह मर चुका था।

चन्द्रगुप्त के मुख पर कठोरता आ गई। कुछ नहीं बोला।

ध्रुवस्वामिनी ने चँद्रगुप्त के मुख को देखा। उसने अपने निचले होठ को काटा। और झपट कर चंद्रगुप्त के पैर पर गिर पड़ी।

चंद्रगुप्त ने उसे उठा कर कहा, आपका दोष नहीं है। यही होना था। उठिए।

ध्रुवस्वामिनी उठकर खड़ी हो गई। बोली देखिए, आपके कहने से मैंने रामगुप्त से विवाह का नाटक किया था। किन्तु आपको मालूम है कि मैंने अपने शरीर को उसे छूने नही दिया है। मैं आपकी रही हूं। अब भी हूँ। किन्तु

चंद्रगुप्त ने कहा, जो हो चुका है उसे भूलना ही ठीक है।

नहीं, मैं हत भागिनी हूँ। मुझे आर्शीवाद दीजिए कि अगले जन्म में मैं आपकी सेवा कर सकूं।

और उसने पुनः झट में दूसरी कटार खींचकर अपनी छाती पर चलाना चाहा। परन्तु विजली की तरह तेजी से झपट कर चंद्रगुप्त ने उसका हाथ पकड़ लिया। और कटार छीन ली। यह क्या करती हो? तुम्हारा दोष क्या है? ध्रुवस्वामिनी सामने खड़ी हो गई। आंखों से आँसू गिरने लगे। रुंधे गले से उसने पूछा, आप मेरा दोष नहीं मानते हैं?

नही।

तो अब प्रसन्नता से मर सकती हूँ।

अब मरने की क्या आवश्यकता है?

चंद्रगुप्त की आँखों में आंखे डालकर ध्रुवस्वामिनी बोली, देखिए, मैं बच्ची नहीं हूँ। जानती हूं कि अपने अपमान का बदला लेने के लिए तथा मूलतः मुझे प्राप्त करने के लिए ही रुद्रसिंह ने यह आक्रमण किया है। अतः मैं अपने लिए आपको कष्ट में डालना नहीं चाहती।

रुक्ष स्वर से चंद्रगुप्त ने पूछा, तो क्या आप रुद्रसिंह के यहाँ स्वतः जाना चाहती है?

हाँ दूसरा उपाय क्या है?

आपको गुप्तवंश की प्रतिष्ठा का ख्याल नहीं है?

है उसी के लिए तो जाना चाहती हूँ।

यह कैसे?

मैं चाहती हूँ कि रुद्रसिंह की शर्त मान कर अब मगध संकट मुक्त करा दूँ। बाद में रुद्रसिंह की हत्या कर आत्म हत्या करलूँ।

चंद्रगुप्त ने क्रुद्ध कंठ से कहा, यह मेरे पौरुष का अपमान है। यह नहीं हो सकता। आपको गुप्तवंश की वधू की तरह शालीन रहना चाहिए।

चन्द्रगुप्त की डांट से इस विकट समय में भी ध्रुवस्वामिनी का हृदय कमल की तरह खिल उठा। बोली, तो आप क्या चाहते हैं? गंभीर स्वर से चन्द्रगुप्त ने कहा, मुझे आपके प्रथम साक्षात् कार का स्मरण है। आपने जो कहा था कि "वलिदान करना होगा" मैं समझता हूँ कि देवी की प्रेरणा से आपके मुख से वह वाक्य निकला था। भैया का वलिदान हुआ। अब विजय मिलेगी।

तो .... ?

मुझे आपकी प्रेरणा चाहिए।

तो आप मुझे .... ?

हाँ, सम्राट पद के साथ ग्रहण करुँगा। यही ईश्वरेच्छा है। और आपकी प्रेरणा से ही शकों पर विजय प्राप्त करूँगा।

लेकिन .... ?

आप निश्चिन्त रहें। इस समाचार को अभी गुप्त रखना है। सम्राट के शव को छिपा कर रख देता हूँ। आप इसकी रक्षा करें। मैं महासेनापति को बुला कर परामर्श करता हूँ।

और चन्द्रगुप्त बाहर निकल गया।

—:०:—

महासेनापति से परामर्श कर चन्द्रगुप्त ने सेना में घोषणा करवा दी कि सम्राट अस्वस्थ हो गये हैं। और उन्होंने सम्राट पद का कार्य-भार युवराज चन्द्रगुप्त पर सौंप दिया है।

चन्द्रगुप्त की ओर से शक राजदूत को सूचित किया गया कि शक साम्राट की शर्त मगध को स्वीकार है,"किन्तु पट्टराजमहिषी के अनुरूप उनकी यात्रा का प्रबन्ध होना चाहिए। जैसे वे अपनी सौ दासियों के साथ जायँगी। दासियाँ शिविकाओंमें रहेंगी। और उन शिविकाओं को सीधे सम्राट के अन्त: कक्ष तक जाने दिया जायेगा। पट्टराजमहिषी को सम्राट के अतिरिक्त और कोई नहीं देखेगा।"

यदि उपर्युक्तशर्तें शकसम्राट को स्वीकृत हो तो मगध की ओर से पट्टराजमहिषी को भेज दिया जायगा।

राजदूत के द्वारा मगध की स्वीकृत की सूचना पाकर रुद्रसिंह आनन्द मस्त हो गया उसने विजयोन्माद में मगध की शर्त पर कोई शँका नहीं की। शीघ्र उसकी स्वीकृति की सूचनाभेज दी।

अत: दूसरे दिन मगध की ओर से ध्रुवस्वामिनी को भेजने का प्रबन्ध किया गया।

सुन्दर झालरों से युक्त १०१ शिविकायें प्रस्तुत की गई। प्रत्येक शिविका के लिए छह वाहक थे। शंखनाद होने के बाद अपनी दासियों के साथ ध्रुवस्वामिनी शिविका में बैठी। शिविकायें चल पड़ी।

शक शिविरमें आनन्दोत्सव मनाया जा रहा था। शक सैनिक मद्यपान से मत्त होकर नृत्य सगीत में डूबे हुए थे।

रुद्रसिंह वासना की आग में जलता हुआ अपने शरीर को सजाने में मस्त था। शहनाई बज रही थी। तोरण सजाए जा रहे थे।

इस प्रकार कुछ देर में ही वह युद्ध शिविर वरयाभिक शिविर के रूप में परिणत हो गया था।

धीरे धीरे शिविकायें पहुँची। शक सुन्दरियों ने शिवकाओं पर पुष्पमालायें डालीं। और पूर्व निश्चयानुसार शिविकाओं को रुद्रसिंह के अन्त:पुर के प्रांगण में पहुँचा दिया गया।

कामातुर रुद्रसिंह ध्रुवस्वामिनी की शिविका के समीप गया। उसके पटों को हटाकर बड़े ही प्रेम से ध्रुवस्वामिनी का हाथ पकड़ कर बोला, मैं पट्टराजमहिषी जी का स्वागत करता हूँ। आइए, मेरे हृदय को शांत कीजिए।

और उसने धीरे से हाथ खींचा।

ध्रुवस्वामिनी बाहर निकली। रुद्रसिंह उसे अंक में भर लेने के लिए हाथ फ़ैलाकर आगे बढ़ा। किन्तु ठीक इसी समय दृष्य बदल गया, ध्रुवस्वामिनी के स्थान राजकुमार चन्द्रगुप्त खड़ा था।

साड़ी और उत्तरीय को फेंककर हाथ में नग्न तलवार लिए चंद्रा-गुप्त ने रुद्रसिंह को ललकार कर कहा, बचो मौत सिर पर आ गई है रुद्रसिंह डर से कांप गया। फिर भी उसने कोष से तलवार खींच ली और विद्युतवेग से उसने चन्द्रगुप्त पर उसका वार कर दिया।

किन्तु वीर चन्द्रगुप्त उसके वार विफल कर एक ही आघात से उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया।

और उसके सिर के भाले की नोक पर टांग कर जोर से जयनाद किया।

शिविकाओं में चुने हुए सामन्त कुमार बैठे हुए थे तथा शिविका वाहक चुने हुए वीर सैनिक थे। इन लोगोंने व्यूह रचना कर रुद्रसिंह के शस्त्रागार को कब्जे में कर लिया।

इस बदले हुए अप्रत्याशित दृश्य को देखकर शक सैनिक स्तब्ध हो गए । किन्तु कुछ देर बाद ही उनकी नैसर्गिक वीरता ने उन्हें सावधान किया । और उन्होंने इस छोटे से दल पर आक्रमण कर दिया ।

तलवारें चमक उठीं । हथेली प्राणलिए हुए वीर मागध अपने प्रिय नेता चन्द्रगुप्त के साथ महाकाल के दल की तरह कराल आघात करने लगे । शक सेना कद्दू की तरह कटने लगी ।

और ठीक इसी समय शकों के अन्तःपुर में तथा भण्डारगृह में आग लग गई । उधर जोरों का हाहाकार मच गया ।

यह कार्य वीरभद्र ने किया था । चंद्रगुप्त ने षडयंत्र कर उसे अन्तिम समय में इसी तरह के कार्य के लिए भेजा था । उधर आग लगाकर वह भी मागध दल में सम्मिलित हो गया ।

अब शक सेना घबड़ा उठी ।

शस्त्रागार शत्रुओं के हाथ में था । भण्डार गृह जलने लगा । अन्तःपुर की स्त्रियो के प्राण संकट में पड़ गए ।

बहुत से शक सैनिक भागकर अन्तःपुर की रक्षा के लिए चले गए ।

और इधर अस्त व्यस्त शक सैनिक गाजर मूली की तरह वीर सामन्तों की पैनी तलवार से कटने मरने लगे ।

ठीक इसी समय शक सेना पर तीन तरफ से मगध सेना ने आक्रमण कर दिया ।

शक सेना घबड़ा गई उसका मनोबल समाप्त हो गया, और वह भाग चली ।

—o—

शकों पर विजय प्राप्त कर लौटनें के बाद, रामगुप्त के मरजाने की घोषणा कर दी गई। और, साथ ही यह भी घोंषणा की गई कि राजकुमार चन्द्रगुप्त ने सम्राट पद का भार लेलिया है।

सन्ध्या समय था। शतवर्तिका दीपाधार के दीप जल रहे थे। सम्राट चँद्रगुप्त महासेनापति, भट्टाश्वपति के आदि प्रमुख पदाधिकारियों के साथ बैठे हुए थे। सामने वीरभद्र भी बैठा था।

सम्राट चँद्रगुप्त नें कहा, वीरभद्र, इस शक विजय का सबसे बड़ा श्रेय तुम्हें है, क्योंकि यदि तुमने गुप्त सूचना न दी होती, तो सच कहता हूं, मुझे वहाँ जाने का साहस नहीं होता। इसके अतिरिक्त यदि समम पर तुमने आग न लगाई होती, तो शक सेना सँभल जाती, और मैं बच न पाता।

बीरभद्र बोला, देव, जो कुछ मैंने किया है, देव के निर्देश पर किया है। इसमें मेरा अपना कुछ नहीं है।

कुछ रुककर चंद्रगुप्त ने कहा, सुनो, मैं तुम्हें पुरस्कार देना चाहता हूँ। कहो, क्या मांगते हो ?

देव आपके चरणों की सेवा से मैं वंचित न किया जाऊँ, यही मेरी प्रार्थना है।

हँसकर चंद्रगुप्त ने कहा, यह तो दान की प्रतिष्ठा है, मुख्यदान नहीं। अच्छा देखो, तुम्हें मैं देवगढ़ का सामन्त पद देता हूँ।

वीरभद्र ने उठकर अभिवादन किया। उसका गला भर आया। आँखों में आँसू आ गये।

ठीक इसी समय चार दासियाँ एक काष्ट - पट्टिका पर रक्तस्नाता मन्दाकिनी को उठा कर लाईं। वह मूर्छिता सी थी।

चन्द्रगुप्त ने घबड़ा कर पूछा, यह क्या हुआ है ?

साथ में आया हुआ प्रतिहारी बोला, इन्होंने पट्टराजमहिषी जी पर पीछे से छूटिका से आक्रमण करने का प्रयास किया था। संयोग से एक सेविका ने देख लिया। वह बीच में आ गई। और उसने इनका हाथ पकड़ लिया। कोलाहल हुआ, अन्य दासियाँ भी आ गईं।

किन्तु ये मरने मारने पर उतारू थीं। फलतः ये घायल हो गई हैं।

चन्द्रगुप्त ने भीत स्वर से पूछा, और, पट्टराजमहिषी की हालत क्या है ?

उनको कोई आघात नहीं लगा है।

इसी समय मन्दाकिनी होश में आ गई। उसने उठने की कोशिश की। उसके मुख का कपड़ा हट गया। वीरभद्र ने देखा, चौंक कर बोला, ओह, धर्ममित्रा, तुम मन्दाकिनी बनी थी ?

धर्ममित्रा ने वीरभद्र को देखा। उसके मुख पर एक साथ हर्ष - विषाद आदि कई भाव आये - गये। क्षण भर रुक कर वह धीरे से बोली, अन्त में मुझे तुम्हारे दर्शन मिल गये। कृतार्थ हो गई।

चन्द्रगुप्त ने पूछा, वीरभद्र, तुम इन्हें जानते हो ?

वीरभद्र ने संक्षेप में समस्त परिचय देकर कहा, यहाँ ये मन्दाकिनी रूप में थी, इसे मैं नहीं जान सका था।

चन्द्रगुप्त ने कहा, जो बातें बीत गईं, उन्हें भूल जाना चाहिए। इन्होंने हम लोगों का उपकार भी किया है, साथ ही, भैया की ओर से इन्हें सम्मान मिला था, अतः मैं इन्हें पूज्य मानता हूँ। इन्हें बचाने का प्रयत्न होना चाहिए।

धर्ममित्रा कराह कर बोलीं; आर्य, मैं आपकी इस सद्‌भावना की अधिकारिणी नहीं हूँ। कुछ लोगों के बहकावे में आकर तथा अपने

स्वार्थ के लिए आपकी बहुत हानि की है। अब जीना नहीं चाहती हूँ। केवल क्षमा की भीख मांगती हूँ।

और, वीरभद्र की ओर घूम कर बोली, आर्य, आपसे मेरी एक प्रार्थना है, क्या स्वीकार करेंगे ?

वीरभद्र समीप चला गया। पूछा, क्या कहना है ?

जिसके साथ आपका विवाह हुआ था, क्या उसे देखना चाहेंगे ?

चौंक कर वीरभद्र ने पूछा, क्या मतलब ?

पहले कहिए, देखना चाहते हैं ?

हूँ।

मैं हूँ।

तुम ?

हाँ।

किन्तु पहले तुमने क्यों नहीं बतलाया ?

मैंने अपने को आपके योग्य नहीं समझा। देवता पर बासी फूल चढ़ाना अनुचित होता है। किन्तु देव, अन्तर्यामी जानते हैं कि मेरे अन्तर की सबसे बड़ी साध आपके चरणों की सेवा रही है। परन्तु इस हतभागिनी के भाग्य में वह नहीं बदा था। आपके सामीप्य के लिए ही मैं यहाँ आई थी। आह, ... ओह ...., वह कराहने लगी। वीरभद्र सब कुछ भूल गया। झपट कर उसके समीप बैठ गया। उसे उठा कर बोला, ओह, तुम भूल कर गई। तुम्हें मुझे बता देना चाहता था। किन्तु अब मुझे छोड़कर कहीं मत जाओ।

धर्ममित्रा की व्याकुलता बढ़ गई। कराह कर बोली, देव अब, तो तब समाप्त हो गया है। मेरी प्रार्थना स्वीकार करें।

कहो।

मेरी अन्तिम क्रिया अपनी पत्नी के रूप में आप स्वयं कर दें। इससे मुझे शान्ति मिल जायगी। कहिए स्वीकार है ?

वीरभद्र का गला भर आया। बोल न सका। अतुर कंठ से धर्ममित्रा ने पूछा, क्या करते हैं ? जल्द कहिए।

स्वीकार है।

अब शान्ति से मर सकूंगी। और धर्ममित्रा ने वीरभद्र के चरण की धूलि लेकर सिर से लगा लिया।

और एक हिचकी आई। प्राण पंछी उड़ गए। वीरभद्र फफक कर रो पड़ा।

सब लोग उठकर खड़े हो गए। सबों की आँखों से आँसू छलक पड़े।

—o—

विजयिनी मगध सेना के साथ पाटलिपुत्र लौटने पर मगध की जनता ने सम्राट चन्द्रगुप्त का हार्दिक स्वागत किया। प्रत्येक परिवार किंवा प्रत्येक व्यक्ति में हर्षोल्लास छाया हुआ था।

रामगुप्त की अन्त्येष्ठि क्रिया के उपरान्त शुक्ला दशमी को सम्राट पद पर चन्द्रगुप्त का अभिषेक किया गया। चन्द्रगुप्त ने ध्रुवस्वामिनी को पत्नी रूप में स्वीकार कर लिया था, अतः पट्टराजमहिषी पद पर उसका भी साथ ही अभिषेक किया गया।

अभिषेक के अवसर पर विषणु महायज्ञ का आयोजन किया गया था जिसकी पूर्णाहुति द्वादशी को प्रातः काल सम्पन्न हुई। उसी अवसर पर विद्वत् सभा का आयोजन हुआ था, जिसने सम्राट् चन्द्रगुप्त को "शकारि विक्रमादित्य" की उपाधि से विभूषित किया।

सम्राट् चन्द्रगुप्त ने विद्वत् सभा में ही घोषणा की कि मगध शासन की ओर से सभी धर्मों को समान सम्मान प्राप्त होगा। शासन की ओर से किसी भी धर्म के प्रति पक्षपात नहीं किया जायगा।

इसके अतिरिक्त विद्वानों और कलाकारों का उचित आदर किया जायगा। क्योंकि, मैं समझता हूँ कि समाज को सुधारों की दिशा में, वद्वद् वर्ग एवं साहित्यिकों के सहयोग के बिना कुछ नहीं किया जा सकता है। अतः प्रत्येक विद्वान, साहित्यकार तथा कलाकार के लिए शासन की ओर से योग्यतानुसार वृत्ति की व्यवस्था की जायगी।

इसके साथ में आज यह भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि सम्पूर्ण भारत से शकों के शासन को समाप्त किये बिना मैं पाटलिपुत्र के राजभवन में निवास नहीं करूँगा।

घोषणा के बाद, महाकवि कालिदास ने विद्वद् वर्ग की ओर से सम्राट को अभिनन्दन पत्र समर्पित किया।